RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : MISC/CPM/01/KPHO/2019-21
प्रधान डाकघर कानपुर–डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/–

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

अक्टूबर–2020 | वर्ष – 12 | अंक : 9 | मूल्य : 5/–

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (इं. जल संस्थान), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश : सुनीता धीमान, 414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 9450871741
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय : 40/69, डी–5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख कानपुर मण्डल : पुष्पेन्द्र गौतम, मल्हौसी, औरेया, उ.प्र. मो.: 9456207206
हरियाणा राज्य : डा. रमेश रंगा, ग्राम–सराय, औरंगाबाद, पो.–बहादुरगढ़,जिला–झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार कार्यालय : ग्रा. व पो.–रामटौरिया, जिला–छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य : दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट–III, बदरपुर, नई दिल्ली–44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.–1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला–अलवर–301001, मो. : 09887512360, 0144–3201516
चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला–अलवर, मो.–09829855349
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.–08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय : ग्रा व पो.–रिवई (सुनैचा), जिला–महोबा (उ.प्र.) मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.–रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें – भारतीय स्टेट बैंक, शाखा–नवीन मार्केट, कानपुर खाता सं.–33496621020 • IFSC CODE-SBIN005307

दोहरे मानक से रजत मानक तक

निजी संपत्ति और वैयक्तिक लाभ की आकांक्षा पर आधारित व्यापार, समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है। जिसके बिना इसके सदस्यों के लिए अपने श्रम से निर्मित विशेष उत्पादों का वितरण कठिन होगा। निश्चय ही लाटरी अथवा एक प्रशासकीय मुक्ति इसकी प्रवृत्ति के विरूद्ध होगी। वास्तव में यदि इसे अपना स्वरूप अक्षुण्ण रखना है तो पृथक उद्योग के उत्पादों के आवश्यक वितरण के लिए केवल एक ही रास्ता है, वह है निजी व्यापार का। परंतु अनिवार्यतः एक व्यापारिक समाज धन केन्द्रित समाज होता है एक ऐसा समाज जो आवश्यकतानुसार अपना लेन/देन मुद्रा द्वारा संपन्न करती है। वास्तव में, यह वितरण मुख्यतः उत्पादों से उत्पादों का विनिमय नहीं होता वरन् मुद्रा के बदले उत्पाद होता है। अतः इस प्रकार के समाज में मुद्रा ऐसी धुरी बन जाती है जिस पर सभी कुछ घूमता है।

समस्त मानवीय प्रयासों, रूचियों, इच्छाओं और आंकाक्षाओं का केंद्र बिंदु धन है, अतएव व्यापारिक समाज मूल्य की दुनिया में कार्य करने को बाध्य है, जहां सफलताएं और असफलताएं उत्पादन मूल्य की अपेक्षा उत्पादन लागत के मध्य सूक्ष्म परिगणना पर आधारित होती है।

अर्थशास्त्रियों ने निस्संदेह इस बात पर बल दिया है कि मूलभूत रूप से धन से बढ़कर अन्य कोई वस्तु महत्वपूर्ण नहीं हो सकती। जो अपने सर्वोत्तम रूप में एक ऐसा विशाल चक्र है जिसके माध्यम से समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसके जीवन निर्वाह, सुख/सुविधाओं और आमोद–प्रमोद के साधनों का उचित अनुपात में नियमित रूप से वितरण होता रहता है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से धन का मूल्यांकन निश्चित रूप से परिभाषित किया जा सकता है कि नहीं यह एक खुली चर्चा का विषय है। परंतु इतना सुनिश्चित है कि धन के प्रयोग के बिना ''जीवन निर्वाह, सुख/सुविधाएं और आमोद–प्रमोद के साधनों का यह वितरण'', साधारणतया उपलब्ध होना तो दूर, यदि पूर्ण रूप से स्थगित न भी हुए तो, बड़ी दुखद स्थिति में अवरूद्ध अवश्य होंगे। मुद्रा के अभाव में क्या उत्पादों का व्यापार संभव है? वस्तु–विनिमय की कठिनाइयां सभी अर्थशास्त्रियों के लिए एक स्थायी चुनौती बन गई है, इसमें वे अर्थशास्त्री भी सम्मिलित है, जो इस बात पर दृढ़ थे कि मुद्रा मात्र एक आवरण है। वस्तु–विनिमय की कठिनाइयों का निराकरण करके मुद्रा न सिर्फ व्यापार को सरल बनाने के लिए आवश्यक है, वरन् विशिष्टता प्रदान करके उत्पादन में वृद्धि के लिए भी जरूरी है। क्योंकि उसके निमित्त विशिष्टता के लिए कौन चिंता करेगा यदि वह अपने उन उत्पादों का व्यापार अन्य व्यक्तियों के उन उत्पादों के साथ करने में समर्थ नहीं हो सका जिनको कि वह चाहता था? व्यापार उत्पादन का सेवक है। और यदि व्यापार की समृद्धि नहीं हो सकती तो उत्पादन ही मुरझा जाएगा। अतः यह स्पष्ट कि यदि व्यापारी समाज को जीवित रहना है और विशिष्ट उद्योग में अधिकतम लेन–देन के फलस्वरूप स्वतः अनगिनत लाभों का रसास्वादन करना है तो मुद्रा की ठोस पद्धति अपनानी होगी।

मुगल साम्राज्य की समाप्ति पर भारत को यदि तत्कालीन मानदंडों से देखा जाए तो भारत आर्थिक रूप से एक उन्नत देश था। इसका व्यापार विस्तृत था, इसकी बैंकिग संस्थाएं सुविकसित थी और इसके लेन–देन में साख की सराहनीय भूमिका थी। परन्तु विनिमय का माध्यम और मूल्य का आम मानक अन्य बातों के साथ भारतीय जनता की अर्थव्यवस्था में सबसे अधिक अभावग्रस्त प्रतीत होता रहा जब भारतीय जनता अठारहवीं शताब्दी के मध्य में ब्रिटिश शासन के आधिपत्य में आई। इस घटना के प्रादुर्भाव से पूर्व भारत की मुद्रा सोना और चांदी दोनों में ही थी। हिन्दू सम्राटों के अधीन सोने पर जोर दिया गया था जबकि मुसलमान बादशाहों के शासन में परिचालन–माध्यम के रूप में चाँदी का प्रमुख स्थान था। भारत में मुगल साम्राज्य में आर्थिक प्रणाली के जन्मदाता अकबर के समय से मुद्रा की इकाई सोने की मोहर तथा चाँदी का रूपया थी। मोहर और रूपया दोनों ही सिक्कों का समान भार अर्थात 175 ग्रेन ट्राय था और दोनों ही सिक्कों को किसी धातु के मिश्रण के बिना ढाला जाता था अथवा कम से कम ये दोनों सिक्के शुद्ध माने जाते थे। परन्तु क्या उनका मूल्य एकाकी मानक का था या नहीं था, यह बात संदेहास्पद है। यह विश्वास किया जाता है कि मोहर और रूपया दोनों ही उस समय मूल्य के आम साधन थे और उन दोनों में कोई भी साधन निर्धारण विनिमय की दर के बिना परिचालित किया जाता था। अतः यह मानक इस प्रकार का था जिसे योजना ने दोहरे मानक की अपेक्षा समानान्तर मानक कहा। यह स्पष्ट है कि व्यवहार में कुछ क्षति के बिना अनुपात की कमी का आकलन नहीं किया जा सका। परन्तु इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि ऐसी विलक्षण युक्ति में आरामदायक परिस्थिति मौजूद थी जिसके द्वारा एक दूसरे से असंबंधित मोहर और रूपया साम्राज्य के तांबे के सिक्के दाम के निर्धारित अनुपात में था। अतः यह मानने योग्य है क एक जैसी वस्तु से स्थायी रहने के फलस्वरूप मोहर और रूपया दोनों ही सिक्के निर्धारित अनुपात में परिचालित थे।

दक्षिण भारत में, जहां मुगलों का प्रभाव या चाँदी के सिक्के का प्रचलन नहीं था वहां प्राचीन हिंदू राजाओं का सोने का सिक्का पगोडा मानक मूल्य के रूप में प्रचलित था तथा विनिमय का माध्यम था तथा ईस्ट इंडिया कंपनी के आने तक इसका प्रचलन जारी था।

मुगल सम्राटों ने सदैव सिक्का ढालने का अधिकार 'इंटर जूरा मैजिस्टैटिस'' के रूप में समझा और इसका श्रेय उन्हें जाता है कि इसे उन्होंने इस उत्तरदायित्व की भावना से कार्यान्वित किया। मुगल सम्राटों ने अपने सिक्कों की गुणवत्ता कभी कम करने की नीचता नहीं दिखाई। मुगल सम्राटों ने सिक्का ढालने की अपरिपक्व टैकनॉलाजी की अनदेखी करते हुए अपने साम्राज्य के सबसे सुदूर भागों में भी स्थित विभिन्न टकसालों से जारी किए गए सिक्कों के मानक से मूल रूप से भिन्न नहीं होने दिया। आगे दी गई तालिका में मुगल–रूपयों की कसौटियां दिखाई गई है कि मुगल साम्राज्य के काल में सिक्के का मानक 175 ग्रेन शुद्ध भार के स्तर तक रखा गया।

रुपये का नाम	शुद्ध ग्रेन में भार	रुपये का नाम	शुद्ध ग्रेन में भार
लाहौर का अकबरी	175.0	दिल्ली सोनत	175.0
आगरे का अकबरी	174.0	दिल्ली आलमगीर	175.0
आगरे का जहांगीरी	174.6	पुराना सूरत	174.0
इलाहाबाद का जहांगीरी	173.6	मुर्शिदाबाद	175.9
कंधार का जहांगीरी	173.9	1745 का फारसी रुपया	174.5
आगरे का शाहजहांनी	175.0	पुराना ढाका	173.3
अहमदाबाद का शाहजहांनी	174.2	मुहम्मदशाही	170.0
दिल्ली का शाहजहांनी	174.2	अहमदशाही	172.8
दिल्ली का शाहजहांनी	175.0	शाहआलम	175.8
लाहौर का शाहजहांनी	174.0		

जब तक साम्राज्य ने अक्षुण्ण प्रभाव बनाए रखा तब तक टकसालों की बहुलता में खतरा न होकर लाभ ही था क्योंकि एक ही सत्ता के एक विभाग की अनेक शाखाएं थीं। परन्तु मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद उसके अलग–अलग टुकड़ो में विभाजन के फलस्वरूप शाही टकसाल की विभिन्न शाखाएं सिक्का ढालने के प्रयोजन से स्वतंत्र कारखानों में परिवर्तित हो

गई। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद स्वतंत्रता के सामान्य होड़ के कारण संप्रभुता के सबसे अचूक लक्ष्य के रूप में सिक्का ढालने का अधिकार तत्कालीन राजनीतिक खिलाड़ियों के लिए सर्वोपरि बन गया था यह भी अन्तिम सुविधा थी, जिससे पतनोमुख राजवंश चिपटे रहे और यही उन साहसी सत्ता हथियाने वालों का प्रथम लक्ष्य बन गया। इसका परिणाम यह हुआ। वह अधिकार जो कभी पूर्ण निष्ठा से कार्यान्वित किया जा रहा था उसका अनुशासनहीनता से दुरूपयोग किया गया। प्रत्येक स्थान पर टकसालें पूरे जोर शोर के साथ चलाई गई और शीघ्र ही देश मे विभन्न प्रकार के सिक्के नजर आने लगे राजवंशों का शीघ्र ही लगातार उत्थान तथा पतन होने लगा और इससे विनिमय का आश्चर्यचकित माध्यम भी प्रस्तुत हुआ। यदि इन मुद्रा के व्यापारी राजाओं ने मुगल सम्राटों के मूल मानक के समान अपनी मुद्राओं को बनाए रखा होता तो समान मूल्य के भिन्न–भिन्न प्रकार के सिक्कों को बनाने से कोई चिन्ता की बात नहीं थी। परन्तु उन्होंने यह धारणा बना ली थी कि उनकी प्रजा द्वारा जिस मुद्रा का उपयोग होता था वह मुद्रा उनके द्वारा बनाई गई है। अतः इस क्षेत्र में वे जैसा चाहें कर सकते हैं तथा उन्होंने अनेक सिक्कों को घटिया धातु का बनाना शुरू कर दिया यद्यपि उसका मूल्य वही रखा जो इन सिक्कों में धातु की अलग–अलग मिश्रण के कारण मुद्रा ने अपना प्रमुख गुण सार्वजनिक मान्यता व तुरन्त लेन–देन क्षमता को आवश्यक रूप से खो दिया।

इस स्थिति के फलस्वरूप उत्पन्न बुराइयों की केवल कल्पना की जा सकती है। जब सिक्कों के तत्वों में उन पर अंकित मूल्य को झुठला दिया गया तो वे केवल व्यापार की वस्तुएं ही रह गए और कहने के लिए कोई भी मुद्रा ऐसी नहीं रही जिसे विनिमय के लिए तुरंत साधन माना जाए। प्रत्येक सिक्के के सर्राफा मूल्य को सुनिश्चित किया जाता था ताकि इसे दायित्वों के अंतिम वहन के लिए स्वीकार किया जाए। इस प्रकार गरीबों और अनजान लोगों को धोखा देने का अवसर इंग्लैड में 1996 के सिक्को के पूनर्गठन के पूर्व की अपेक्षा कहीं कम नहीं रहा होगा। इस प्रकार लगातार सिक्कों में मिश्रित धातुओं की स्थिति की मिलावट की पहचान के लिए सिक्कों को तौलने, उनका मूल्यांकन करने और उन्हें कसौटी पर घिसकर उनका पता लगाना इस बुराई का एक पक्ष उजागर हुआ। उन्होंने दूसरा भयंकर पक्ष भी प्रस्तुत किया। साम्राज्य के पतन के साथ ही सम्पूर्ण भारत में शाही वैध मुद्रा जैसी वस्तु लोप हो गई। इसके स्थान पर साम्राज्य के छिन्न–भिन्न हो जाने की स्थिति में अलग–अलग राज्य–क्षेत्रों में स्थानीय मुद्रा बनने लगी। ऐसी परिस्थितियों में वस्तु विनिमय, वस्तु के बदले आवश्यक भुगतान में दिए गए सिक्कों की सराफा मूल्य से परिसमाप्त नहीं किया गया। व्यापारियों को इस बात से आश्वस्त होना पड़ता था कि सिक्के उनके निवास क्षेत्र में भुगतान के वैध माध्यम बात से आश्वस्त होना पड़ता था कि सिक्के उनके निवास क्षेत्र में भुगतान के वैध माध्यम है। इस विषय पर बंगाल करैंसी रेग्यूलेशन 35,1793 की प्रस्तावना इस विषय में बहुत ''बंगाल, बिहार और उड़ीसा के मुख्य जिलों में से प्रत्येक जिले में अपनी ही प्रकार की चाँदी की मुद्रा है..... जो उन जिलों में जहां यह क्रमशः परिचालित होती है, सभी लेन–देन के लिए मूल्यांकन हेतु समान है।

''यदि रैयत (किसान) को किसी विशेष प्रकार के रूपये में अपना लगान अदा करना है तो अलबत्ता उन्हें निर्माताओं को अपने अनाज अथवा कच्चा माल देकर रूपये प्राप्त करने थे जबकि निर्माता रैयत के इसी प्रकार के सिद्धान्तों से प्रवृत्त होकर उन व्यापारियों से रूपये की वही किस्से लेते थे जो कपड़े अथवा सामान खरीदने आते थे।

''तदनुसार सभी प्रकार के पुराने रूपये शीघ्र कुछ विशेष जिलों की मुद्रा बन गए और उसके परिणामस्वरूप प्रत्येक रूपये का मूल्य उस जिले में बढ़ा दिया गया जिसमें उसका प्रचलन था क्योंकि सभी लेन–देन में उसकी मांग की गई थी। एक अन्य परिणाम के रूप में जिले में लाया गया प्रत्येक प्रकार का रूपया उस रूपये के मूल्य से कहीं अलग होने के कारण अस्वीकार कर दिया जाता था जिसके आधार पर निवासी अपनी सम्पत्ति का मूल्यांकन करने के लिए अभ्यस्त हो गए थे अथवा यदि इसे प्राप्त किया जाता था तो इस पर वही बट्टा लगाया गया जो उस जिले में प्रचलित रूपये के लिए सर्राफ के घर पर विनिमय हेतु भुगतान किया जाता था अथवा किसी अन्य व्यक्ति को भुगतान के एवज में उसे देने के लिए बट्टा दिया जाता था।

''एक जिले में चालू सिक्के की इस अस्वीकृति से जब दूसरे जिले में भुगतान करना पड़ता तो देश के विभिन्न भागों में सौदागर व्यापारी, मालिक और भूमि जोतने वाले किसान एक दूसरे के साथ अपने व्यवसायिक लेन–देन में विनिमय द्वारा समान हानि तथा उन्हें सभी प्रकार की उन असुविधाओं का सामना करना पड़ता था जो आवश्यक रूप से पैदा हो जाती थी। यह स्थिति अलग और स्वतंत्र सरकारों के अन्तर्गत कई जिलों की थी और उनमें से प्रत्येक जिले का अलग सिक्का था।''

यह ऐसी स्थिति थी जहां व्यापार वस्तुओं की अदला–बदली तक सीमित रह गया था। चाहे कोई व्यक्ति विनिमय के आम माध्यम की अनुपस्थिति द्वारा अदला–बदली को प्रमुख समझे अथवा विनिमय के माध्यम की बहुलता की उपस्थिति समझे, चाहे जो भी हो यह स्पष्ट है कि दोहरे संयोग के अभाव को व्यापार में लगे लोगों ने महसूस कर लिया होगा। कोई व्यक्ति यह भी विचार कर सकता है कि यह ऐसा मामला नहीं हो सकता था क्योंकि माध्यम धातु की सिक्केनुमा वस्तु थे। परन्तु यह याद रखना है कि भारत में सिक्कों का परिचालन सिक्कों की बारिकी और वैधता में भिन्नता के कारण सिक्कों के वे विभिन्न प्रकार निर्मित किए गए जो किसी विशेष प्रकार के सिक्कों के प्रति विनिमय द्वारा लेन–देन को आवश्यक रूप से बंद नहीं कर पाए, कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में सिक्का एक ऐसा बीच का माध्यम बन गया जिससे पुनः अन्य से अदला–बदली हो सकती थी और यह क्रम तब तक चलता रहता जब तक सिक्के का वांछनीय प्रभार प्राप्त न होता। यह पर्याप्त संकेत है कि समाज अदला–बदली की स्थिति में डूब गया था। यदि इस स्थिति में इतनी ही कमी होती तो यह कमी उतनी ही खराब होती जैसी कि सिक्कों की विविधता के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की होती है, परन्तु इसमें इस तथ्य से अधिक जटिलता आ गई कि यद्यपि सिक्कों के मूल–वर्ग समान थे तथापि सिक्कों में धातुओं की मिलावट में काफी अंतर था। इस कारण एक सिक्के पर छूट बढ़ौती उसी प्रकार के व उसी नाम की तुलना में निर्धारित किया जाता था। कितनी छूट या बढ़ोतरी मिलेगी इस ज्ञान के अभाव में प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का ध्यान रखना होता था कि वह उसी प्रकार के सिक्के प्राप्त करे जो वह जानता है तथा जो उसके राज्य क्षेत्र में परिचालित हैं। कुल मिलाकर ऐसी स्थिति से उत्पन्न वाणिज्य की बाधाएं उन बाधाओं से कम न हो सकी जो लाइकरगस के अध्यादेश से उत्पन्न हुई थी जिसने लेसडेमोनिनों को लोहे की मुद्रा उपयोग करने के लिए बाध्य कर दिया था ताकि उसका भार उन्हें अधिक व्यापार करने से रोक सकें। यह स्थिति खीझ उत्पन्न करने अतिरिक्त कटुता के कारण अधिक गंभीर हो गई थी। मुद्रा के उपलब्ध कराने में निवेश की गई पूंजी समुदाय के उत्पादनशील संसाधनों पर लगाया गया कर होती है फिर भी जेम्स विलसन ने जो कुछ भी लिखा है उस पर कोई भी प्रश्न नहीं उठ सकता –

''कि समय और श्रम जो सिक्के की मध्यस्थता से जो बचत होती है वस्तुओं की अदला–बदली की पद्धति की तुलना में उत्पादनशील संसाधनों से ली गई पूंजी के भाग के लिए पर्याप्त पारिश्रमिक निर्धारण करता है जिससे वस्तुओं के एकाकी परिचालन में कार्य करें और देश की अवशेष पूंजी को अधिक उत्पादन के काम में ला सकें।''

इसके बाद उस मुद्रा–पद्धति के बारे में क्या कहा जाए जिसने अदला–बदली के दुष्परिणामों को दूर नहीं किया जबकि उत्पादनशील स्त्रोतों से बहुत बड़ी पूंजी हटा ली गई जो वस्तुओं के एकाकी परिचालक के रूप में काम कर सकें? दूषित मुद्रा, मुद्रा के अभाव से कहीं अधिक खराब होती है। मुद्रा का अभाव कम से कम लागत की रक्षा करता है। परन्तु समाज के पास मुद्रा होनी चाहिए और यह उत्कृष्ट मुद्रा होनी चाहिए। निकृष्ट मुद्रा से उत्कृष्ट मुद्रा पैदा करने का कार्य–भार ईस्ट इंडिया कम्पनी के कंधों पर पड़ा जो इस बीच भारत में मुगल साम्राज्य की उत्तराधिकारी बन गई थी।

सर्वप्रथम 25 अप्रैल, 1806 को कम्पनी के निदेशकों ने अपनी प्रसिद्ध विज्ञप्ति द्वारा सुधार के आधार व्यक्त किए जो उन्होने भारत में अपने राज्य क्षेत्र के प्रशासकीय प्राधिकारियों को भेजे। इस ऐतिहासिक विज्ञप्ति में कम्पनी के निदेशकों ने कहा–

''17 यह एक मत है जिसका समर्थन सर्वोत्तम प्राधिकारियों द्वारा किया गया है और जो अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि सोने और चाँदी के सिक्के निर्धारित तुलनात्मक मूल्यों के आधार पर भुगतान करने के लिए वैध सिक्के के रूप में प्रचलित नहीं किए जा सकते..... बिना हानि के या इस हानि का कारण उन धातुओं के समय–समय पर परिवर्तित मूल्यों का होना है जिनसे इन सिक्कों का निर्माण होता है। सोने और चाँदी के सिक्के का अनुपात कानून द्वारा निर्धारित किया जाता है और यह धातुओं के मूल्य के अनुसार होता है तथा यह सबसे न्यायपरक सिद्धांतों पर आधारित हो सकता है, परन्तु बदलती हुई परिस्थितियों के कारण चाँदी की तुलना में सोने का अधिक मूल्य हो सकता है। उसकी तुलना में जब इन दोनों के बीच अनुपात निर्धारित किया था। इसलिए यह लाभप्रद हो जाता है यदि चांदी या सोने का विनिमय किया जाए ताकि धातु का बना सिक्का परिचालन से हटा लिया जाए और यदि सोने की तुलना में चाँदी के मूल्य में वृद्धि हो तो इन्हीं परिस्थितियों में चांदी के सिक्के की मात्रा परिचालन में कम हो जाएगी। चूंकि इन दोनों धातुओं के मूल्य की घटा–बढ़ी को रोकना संभव नहीं है अतः इन धातुओं से बने सिक्कों से उभरते परिणामों को बचाना भी अव्यावहारिक है धातुओं के मूल्यों में घटा–बढ़ी के अनुसार सोने और चांदी के सिक्कों के तुलनात्मक मूल्यों के समायोजन से अनवरत कठिनाइयां उत्पन्न होंगी और इस प्रकार के सिद्धांत की स्थापना से सदैव असुविधा और हानि उत्पन्न होगी।''

इसलिए उन्होंने भविष्य में भारतीय मुद्रा के लिए एक ही धातु के बने सिक्कों के पक्ष में अपने मत की घोषणा की और यह निर्धारित कियाः–

''21..... कि चांदी (भारत में) लेखा की व्यापक मुद्रा होनी चाहिए और वे सभी लेखे रूपये, आने और पैसे के मूल्य–वर्ग में रखे जाने चाहिए। फिर भी रूपया वैसा नहीं रहा जैसा कि मुगल सम्राटों ने भार और बारीकी की दृष्टि से उसे ढाला था। प्रस्ताव कि ''9..... नया रूपया ..... का कुल भार होगा :–

ट्राय ग्रेन	180
1/12 मिश्र धातु को घटाइए	15
और शुद्ध चांदी ट्राय ग्रेन के मिश्रण	165

यही वे प्रस्ताव थे जो निदेशक मंडल (कोर्ट ऑफ डायरेक्टर) ने भारतीय मुद्रा के सुधार के लिए प्रस्तुत किए।

180 ग्रेन ट्राय भार के रुपये तथा भारत की भावी मुद्रा पद्धति के लिए यूनिट के रूप में 165 ग्रेन शुद्ध चाँदी का मिश्रण तर्कसम्मत विकल्प था।

रुपये का इस विशेष भार के चयन का मुख्य कारण इस इच्छा को व्यक्त करता है कि प्रचलित व्यवस्था से कम से कम भिन्नता होनी चाहिए। उन्होंने इस बात का प्रयास किया कि सिक्कों को द्विधातु के आधार पर बनाए रखने की मुगलों की अव्यवस्थित मुद्रा पद्धति को व्यवस्थित किया जाए। अतः तीन प्रेसीडेंसियों की सरकारों ने पहले ही अपने व्यय क्षेत्रों में विनिमय के लिए देश में विरल माध्यम के रूप में परिचालित सोने और चांदी के सिक्कों का चयन किया। चयन किए गए सिक्कों के भार और बारीकी को मुद्रा की प्रमुख यूनिटों के अन्य विवरण संक्षिप्त तालिका–1 (पृष्ठ 10) में देखा जा सकता है।

अलग–अलग प्रेसीडेंसियों की मुख्य इकाइयों को प्रमुख एकल इकाई में परिवर्तित करने के लिए सबसे निकट और सबसे कम असुविधाजनक भारत की ऐसी मात्रा स्पष्टया 180 ग्रेन जो एक ही समय में पूर्ण सांख्यिक होगी क्योंकि किसी उल्लिखित डिग्री में वर्तमान इकाइयों में से किसी भी इकाई के भार से किसी भी मामले में अलग नहीं थी। इसके अतिरिक्त यह विश्वास किया गया था। कि 180 अथवा 179.5511 ग्रेन उस रुपये के सिक्के का मानक भार था जो मूलतः मुगल टकसालों से जारी किया गया था। अतः इसका अंगीकार वस्तुतः पुरानी इकाई की ही पुनरावृत्ति थी और यह एक नवीन इकाई का प्रवेश नहीं था। 180 ग्रेन की इकाई के पक्ष में एक अन्य लाभ का दावा यह था कि इस प्रकार की मुद्रा की इकाई फिर से वही बन जाएगी जो बंद हो गई थी और इस इकाई का वही भार होगा। यह सहमति व्यक्त की गई कि भारत में पहले सभी भार की इकाई मुख्य सिक्के की इकाई से सम्बद्ध रही इसलिए सेर और हाथ के भार रुपये के गुणांक रहे जिनका मूलतः भार 179.6 ग्रेन ट्राय रहा। यदि मुख्य सिक्के के भार को 180 ग्रेन ट्राय से अलग स्थापित किया जाना था तो यह विश्वास किया जाना था कि यह स्थिति उस प्राचीन प्रथा के बदलाव से कोई अच्छी नहीं होती जो अन्य भारों और मापन के आधार सिक्के के भार के अनुरूप बनाई गई थी। इसके अलावा 180 ग्रेन की इकाई का भार इस दृष्टिकोण से न केवल उपयुक्त था अपितु अपने पक्ष में भार की अंग्रेजी इकाई के साथ भारतीय इकाई के भार को आत्मसात करने की सुविधा को बढ़ाने के पक्ष में भी रहा।

मुद्रा की मुख्य इकाई के भार को 180 ग्रेन ट्राय तक निर्धारित करने के पक्ष में ये कारण थे तथापि 165 ग्रेन शुद्ध भार की परियोजना अपने आप में उचित थी। शासकीय विचार के अनुसार 165 ग्रेन का चयन करना था जैसाकि शुद्धता का स्तर था और यह स्थिति मानक भार के चयन करने में भी रही ताकि वर्तमान प्रबंध में यथासंभव कुछ भी बाधा न हो। शुद्धता का यह मानक चांदी के उन सिक्कों से नितांत भिन्न नहीं था जिन्हें भारत की विभिन्न सरकारों ने अपनी मुद्रा की मुख्य इकाइयों के रूप में मान्यता प्रदान की थी। इसके विवरण आगे दिए गए तुलनात्मक विवरण पत्र में दिए गए हैं।

तालिका–I

मुद्रा की मुख्य इकाइयां

...की सरकार द्वारा जारी	राज्य क्षेत्र जिसमें परिचालित किया गया	जारी करने वाला प्राधिकारण और तारीख	चाँदी के सिक्के नाम	चाँदी के सिक्के भार ट्राय ग्रेन	चाँदी के सिक्के शुद्ध अंश ट्राय ग्रेन	सोने के सिक्के नाम	सोने के सिक्के भार ट्राय ग्रेन	सोने के सिक्के शुद्ध अंश ट्राय ग्रेन
बम्बई	प्रेसीडेंसी		सूरत रुपया	179.0	164.740	मोहर	179	164.740
मद्रास	प्रेसीडेंसी		आर्कोट रुपया	176.4	166.477	स्टार पैगोडा	32.40	42.55
	बंगाल,बिहार और उड़ीसा कटक	विनिमयक XXXV 1793 का XII,1805 का	सिक्का रुपया (उन्नीसवां सन्)	179.66	175.927	मोहर	190.804	189.40
बंगाल	हवाले किए प्रांत		फर्रुखाबाद रुपया					
	विजित प्रांत	XIV,1803का	पैंतालीसवें	173	166.135	-	-	
	बनारस प्रांत	III, 1806का	सन् का लखनऊ सिक्का बनारस रुपया (मछलीघर)	175	168.875	-	-	

तालिका II

मुख्य मान्यता प्राप्त रुपये से भिन्न शुद्धता के प्रस्तावित मानक का अपसरण

मुख्य इकाईयों के रूप में मान्य चाँदी के सिक्के तथा उनकी शुद्धता		प्रस्तावित चाँदी के रुपये की मानक शुद्धता ट्रायग्रेन	प्रस्तावित रुपये की तुलना में अधिक मूल्यांकन		प्रस्तावित रुपये की तुलना में कम मूल्यांकन	
सिक्के का नाम	उसका शुद्ध अंश ट्राय		ग्रेन में	पी.सी. द्वारा	ग्रेन में	पी.सी. द्वारा
सुरत रुपया	164.74	165	-	-	.26	.157
आर्काट रुपया	166.477	165	1.477	.887	-	-
सिक्का रुपया	175.927	165	10.927	8.211	-	-
फरुखाबाद रुपया	166.135	165	1.135	.683	-	-
बनारस रुपया	169.251	165	4.251	2.511	-	-

इस प्रकार यह देखा जाएगा कि सिक्का और बनारस के रूपये के सिवाय शुद्धता का प्रस्तावित मानक अन्य रुपयों से इतना अधिक मिलता जुलता था कि पर्याप्त विस्थापन के बिना पूर्ण एकरूपता के प्राप्त करने की रूचि ने उसके अंगीकरण की सभी संभव आपत्तियों को अस्वीकार कर दिया। एक दूसरा विचार शुद्धता के मानक के रूप में 165 ग्रेन के चयन में निदेशकों के अधिकरण में छाया रहा, वह यह था कि मानक भार के रूप में 180 ग्रेन के साथ मिलकर ऐसी व्यवस्था की गई कि रुपये को 11/12 शुद्ध बनाया गया। विशेष प्रकार की शुद्धता को निश्चित करने की बात निदेशकों के अधिकरण के लिए अत्यन्त तकनीकी बात थी। परन्तु 1803 में नियुक्त टकसाल ओर सिक्कों के ढालने के लिए ब्रिटिश समिति की राय थी कि "1/12 मिश्रित धातु और 11/12 शुद्ध धातु अधिक मंहगे प्रयोग होते हुए भी सर्वोत्तम अनुपात सिद्ध हुए अथवा कम से कम इतने अच्छे थे जिनका चयन किया जा सकता था। इस मानक को इतना अधिक अधिकारपूर्वक ढंग से स्वीकार किया गया कि अधिकरण ने अपनी भारतीय मुद्रा की नवीन योजना में उसे सम्मिलित कर लिया। इसलिए उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की कि रुपये को 11/12 शुद्ध रखा जाए। परन्तु ऐसा करने के लिए रुपये में 165 ग्रेन की शुद्धता बनाई रखनी थी और उपरोक्त कारखानों से उन्होंने रुपये में ऐसी शुद्धता रखने की इच्छा व्यक्त की भावी घटनाओं के लाभप्रद आधार से एकाकी धातु के लिए निदेशकों के अधिकरण की वरीयता की समीक्षा करते हुए कोई भी व्यक्ति इसे अदूरदर्शी दृष्टि मानने की सोच सकता है। फिर भी ऐसे समय में इस पक्ष में निर्णय के लिए समुचित आधार था। इस सम्बन्ध में प्रथम कार्यवाही के रूप में तीनों महाप्रान्तों ने जिन्हें दृष्टि से महाप्रान्तों में विभाजित किया गया था प्रान्त में सरकार स्थापित होते ही इसे अंगीकार कर लिया तथा मुगलों के समानांतर मानक को मोहर, पैगोड़ा और रूपए के बीच विनिमय के वैध अनुपात की स्थापना द्वारा दोहरे मानक में परिवर्तित किया गया परन्तु किसी भी महाप्रान्त में इस प्रयोग को पूरी सफलता प्राप्त नहीं हुई।

बंगाल में सरकार ने 2 जून, 1766 को 179.66 ग्रेन ट्राय के भार के सोने की मोहरें जारी करने का निश्चय किया और इस मोहर में 149.92 ग्रेन ट्राय शुद्ध धातु थी और इसे रुपये के 14 सिक्के के मूल्य का वैध सिक्का माना गया ताकि खजानों में राजस्व–वसूलियों को अवरूद्ध करने के अपने ही कार्य से अधिकांशतया उत्पन्न मुद्रा–अभाव की पूर्ति हो सके जो वाणिज्य के लिए प्रतिकूल था। यह 16.45:1 का वैध अनुपात था और यह 14.81:1 के बाजार के अनुपात से नितांत भिन्न था। इन दोनों सिक्कों के साथ–साथ परिचालन को सुरक्षित रखने का प्रयास असफल सिद्ध हुआ। चीन, मद्रास और बंबई को बंगाल की चाँदी की निकासी के कारण मुद्रा की स्थिति खराब हो गई। इतना ही नहीं सरकार ने 20 मार्च, 1769 को एक दूसरी सोने की मोहर जारी की जिसका भार 190.773 ग्रेन ट्राय था और जिसमें 190.086 ग्रेन शुद्ध सोना था जिसका मूल्य रुपये के 16 सिक्के के बराबर निर्धारित किया गया। वह 14.81:1 का वैध अनुपात था और यह अनुपात भारत (14.1) और यूरोप (14.61:1) दोनों के बाजार–अनुपात से अधिक था। यह दूसरा प्रयास था कि दोनों ही सिक्कों का एक साथ परिचालन किया जाए परन्तु यह पहले प्रयोग के समान ही सफल नहीं हो सका। सही अनुपात लगाने का कार्य इतना उलझन भरा लगने लगा कि सरकार ने 3 दिसम्बर, 1788 को सोने के सिक्के की ढलाई बंद करके एक धातु के सिक्के ढालने का काम फिर से प्रारंभ कर दिया और जब मुद्रा अभाव फिर दबाव हुआ तो सरकार ने विवश होकर सोने के सिक्के को ढालने का काम फिर शुरु किया। सरकार ने इस बात को वरीयता दी कि मोहर और रुपये को बाजार के मूल्य पर परिचालित किया जाए और इस हेतु किसी भी निर्धारित अनुपात द्वारा उनमें सह संबंध स्थापित करने का प्रयास नहीं किया। 1793 में तीसरा प्रयास किया गया बंगाल में दोहरा मानक स्थापित किया जाए। उस वर्ष एक नयी मोहर जारी की गई। जिसका मान 190.895 ग्रेन ट्राय था और 189.4037 ग्रेन शुद्ध सोना था और इसे रुपये के 6 सिक्कों के बराबर मूल्य का वैध सिक्का माना गया। इसका अनुपात 14.86:1 था परन्तु यह अनुपात उस समय बाजार में विद्यमान अनुपात के समान नहीं था अतः बंगाल में द्विधातु के सिक्के स्थापित करने का तीसरा प्रयास भी ठीक उसी तरह असफल हो गया जैसा कि 1766 और 1769 में असफल प्रयास किया गया था।

इसी प्रकार मद्रास सरकार के प्रयास बंगाल सरकार के प्रयासों से कहीं अधिक असफल सिद्ध हुए। उस महाप्रान्त में ब्रिटिश सरकार के अधीन द्विधातु के सिक्के ढालने का प्रथम प्रयास वर्ष 1749 में किया गया था जब 350 आर्कोट रुपये 100 स्टार पैगोडा के समान वैध माने गए थे। उस समय प्रचलित बाजार भाव के अनुपात की तुलना में इस अनुपात में पैगोडा की कीमत कम आंकी गई और यह पैगोंडा महाप्रान्त का सोने का सिक्का था। पैगोडा के विलुप्त हो जाने के कारण मुद्रा की बहुत कमी हो गई और सरकार दिसंबर, 1750 में फिर से इस मुद्रा को पुनर्जीवित करने पर बाध्य हो गई। यह कार्य दोहरी योजना के अपनाने से सम्पन्न किया गया। एक ओर सरकार के खाते में सोने का आयात किया गया जिससे टकसाल के अनुपात को बाजार के अनुपात के बराबर लाया जाये और दूसरी ओर सरकारी खजानों में केवल पैगोडा द्वारा ही प्राप्तियां और भुगतान करने पर मजबूर किया गया।

दूसरी युक्ति बहुत छोटे मूल्य की रही परन्तु पहली स्थिति अपनी विशाल मात्रा के कारण स्थिति को सुधारने में अधिक फलदायक सिद्ध हुई। दुर्भाग्यवश यह मामला बिल्कुल अस्थायी था। 1756 और 1771 के बीच की अवधि में रुपये और पैगोडा के बराबर भाव के अनुपात में काफी परिवर्तन हुआ। 1756 में यह अनुपात 364:100 था और 1768 में यह अनुपात 370:100 रहा। 1768 के बाद भी ऐसा नहीं था कि 1749 में निर्धारित वैध अनुपात के समान बाजार भाव के अनुपात रहे और यह स्थिति 12 वर्ष तक स्थिर बनी रही परन्तु चांदी के आयात में वृद्धि होने के कारण द्वितीय मैसूर युद्ध को आगे बढ़ाना आवश्यक समझा गया जिसके फलस्वरूप इस अनुपात में व्यवधान पड़ गया और यह अनुपात युद्ध की समाप्ति के बाद 400 अर्कोट रुपए 100 स्टार पैगोडा रह गया। युद्ध की समाप्ति के बाद मद्रास की सरकार ने एक अन्य प्रयास किया कि रुपये और पैगोडा के बीच साथ–साथ परिचालन किया जाए परन्तु बाजार भाव अनुपात 400:100 के वैध अनुपात को स्थापित करने के बजाय उस समय महाप्रान्त में सोने के आयात की वृद्धि के कारण यह आशा बंधी कि बाजार का अनुपात इतना बढ़ जाएगा कि वह 1749 में स्थापित वैध अनुपात के बराबर होगा। इस प्रकार से उत्पन्न नवोदित उत्साह में यह निर्णय किया गया कि 1790 के अनुमान के अनुरूप इस अनुपात को 365:100 निर्धारित किया गया। वांछित परिणाम में स्थिति का भिन्न होना आवश्यक था क्योंकि यह पैगोडा का मूल्यांकन कम करना था परन्तु इस भूल के सुधार की अपेक्षा सरकार ने 1779 में 350:100 के अनुपात में वृद्धि कर स्थिति को और बिगाड़ दिया जिसका कुप्रभाव यह हुआ कि पैगोड़ा पूर्णतया परिचालन से बाहर हो गया और इस प्रकार द्विधातुवाद का अंतिम प्रयास बुरी तरह असफल रहा।

ऐसा प्रतीत होता है बंबई की सरकार द्विधातुवाद की यांत्रिकी में अपेक्षाकृत अधिक ज्ञान प्राप्त कर चुकी थी यद्यपि इससे पद्धति की व्यावहारिक कठिनाइयों को दूर करने में कोई सहायता नहीं मिली। पहली बार जब महाप्रान्त में द्विधातुवाद का कार्य प्रारंभ किया गया था तो मोहर और रुपए का अनुपात 15.70:1 था परन्तु इस अनुपात पर मोहर की दर अधिक पायी गई और तदनुसार अगस्त, 1774 में टकसाल के अधिकारी को यह निदेश दिया गया कि वेनिश के मुद्रा शुद्धता से सोने की मोहरों के सिक्के ढाले जाएं और उनका भार चांदी के रुपये के भार के समान हो। इस परिवर्तन से वैध अनुपात 14.83:1 पर जो लगभग बिल्कुल ठीक वैसा नहीं था जैसा कि तत्कालीन बाजार भाव की अनुपात 15:1 प्रचलित था और कोई भी अनहोनी घटना नहीं घटी अतः द्विधातुवाद को अन्य दोनों महाप्रान्तों की तुलना में बम्बई में अधिक सफलता मिल जानी चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं होना था, क्योंकि सूरत के नबाव की बेईमानी के कारण स्थिति बिल्कुल ही बदल गई क्योंकि उन्होंने बम्बई के रुपये के समान भार तथा शुद्धता वाले रुपये का 10, 12 और यहां तक कि 15 प्रतिशत भाग में खोट मिला दिया। इस खोट मिलावट के काम का अहितकर प्रभाव बम्बई महाप्रान्त के द्विधातु पद्धति पर नहीं पड़ता यदि यह तथ्य न होता कि नवाब (सूरत के नवाब) के रुपयों के बारे में यह समझौता किया गया था कि कम्पनी के क्षेत्र में बम्बई के रुपयों के समान ही उनका परिचालन किया जाएगा। उनके वैध सिक्के मानने के फलस्वरूप सूरत के रुपये एक बार खोट मिलावट के बाद बम्बई के रुपयों को परिचालन से बाहर की नहीं कर दिए गए अपितु मोहर भी परिचालन से अलग हो गई क्योंकि सूरत के रुपयों की खोट मिलावट के बाद यह अनुपात सोने के लिए भी अहितकर हो गया और सफल द्विधातु पद्धति का एक अन्य अवसर खो गया। एक बार फिर मोहर और रुपये के बीच द्विधातु के अनुपात निर्धारण का प्रश्न उठा जब बंबई की सरकार ने सूरत के रुपयों को अपनी ही टकसाल में ढालने की अनुमति प्रदान की। 1744 के विनिमय के अनुसार सोने की मोहर ढालने के काम का प्रश्न ही नहीं उठता। बम्बई की मोहर में शुद्ध सोने का अंश 177.38 ग्रेन था और 1800 के मानक के 15 सूरत रुपयों में चाँदी का अंश 247.11 ग्रेन रहा। इस विनिमय के अनुसार चांदी सोने का अनुपात 247.11/177.38 अर्थात 13.9:1 हुआ। इस स्थिति में मोहर का मूल्य बहुत कम आंका गया अतः यह संकल्प किया गया कि सूरत रुपये की तुलना में मोहर के मानक के परिवर्तन कर दिया जाए और इस प्रकार यह अनुपात 14.9:1 रहा लेकिन बाजार का अनुपात 15.5:1 रहा अतः यह प्रयोग बिल्कुल ही सफल न हो पाया।

इस अनुभव के प्रकाश में ईस्ट इंडिया कम्पनी के निदेशकों के अधिकरण ने भारत में भावी मुद्रा पद्धति के आधार के रूप में एकल धातु मानक निर्धारित किया। सभी मुद्रा विषयक विनिमयों का मुख्य उद्देश्य है कि मुद्रा की अलग–अलग इकाईयों में पारस्परिक मूल्य का स्थिर संबंध होना चाहिए। मूल्य में स्थाई निर्धारण के बिना मुद्रा की स्थिति अस्त–व्यस्त हो जाएगी और उस निर्धारण की अस्थायी अस्त–व्यस्तता के लिए कोई भी पूर्वोपाय विशेष लाभप्रद न होगा। मुद्रा के विभिन्न भागों के मध्य स्थिरता सुनियोजित मुद्रा पद्धति इतनी आवश्यक है कि हमें यह जानकर आश्चर्य नहीं है कि निदेशकों के अधिकरण ने इस पर अधिक महत्व दिया जैसा कि उन्होंने किया जबकि विशेष रूप से मुद्रा को ठोस और स्थायी आधार पर बनाए रखने के कार्य में लगे थे। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनका एकल धातु का चयन गलत सलाह के कारण था क्योंकि यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि दोहरे मानक की तुलना में इस प्रकार का एकल मानक इस स्थिरता को अपेक्षाकृत अधिक अच्छी सुरक्षा प्रदान करता है। पहले प्रकार में यह स्वतः उत्पन्न होता है जबकि दूसरे प्रकार में यह विवश होकर करना पड़ता है।

निदेशकों के अधिकरण की इन सिफारिशों को भारत की विभिन्न सरकारों पर छोड़ दिया गया ताकि वे अपने विवेक के अनुसार इनको कार्यान्वित करें जहां तक समय और कार्यविधि का संबंध है इन आदेशों के समरूप कदम उठाने और यहां तक कि अधिकरण के कार्यक्रम के उन भागों को पूरा कर लेने पर कुछ समय लगा जिनका संबंध एक सी मुद्रा की स्थापना से था कि विभिन्न सरकारों के प्रयत्नों पर सबसे पहले ध्यान केन्द्रित किया गया।

अधिकरण द्वारा प्रस्तावित मुद्रा की इकाईयों में मुद्रा की वर्तमान इकाईयों को बदल देने का कार्य सर्वप्रथम मद्रास में सम्पन्न किया गया। 7 जनवरी, 1818 को सरकार ने एक घोषणा जारी की जिसके द्वारा मुद्रा की पुरानी इकाईयों आर्कोट रुपया और स्टार पैगोडा के स्थान पर नई इकाइयां स्थापित की गई अर्थात् सोने का रुपया और चांदी का रुपया परिचालित किया गया जिनमें से प्रत्येक का भार 180 ग्रेन ट्राय था और जिसमें 165 ग्रेन शुद्ध धातु थी। 6 अक्टूबर, 1824 की घोषणा द्वारा 6 वर्ष बाद बंबई द्वारा मद्रास का अनुसरण किया गया। इसके अनुसार यह घोषित किया गया कि मद्रास मानक का सोने व चांदी का रुपया सारे महाप्रान्त में एक मात्र वैध मुद्रा होगी। बंगाल की सरकार को कहीं बड़ी समस्या का समाधान करना था। इसके पास चांदी की मुद्रा की तीन अलग–अलग मुख्य इकाइयां थीं जिन्हें अधिकरण द्वारा प्रस्तावित मानक के अनुसार परिवर्तित किया जाना था। इसने समाप्त करने और परिवर्तन करने की पद्धति द्वारा पुनर्गठन का कार्य प्रारंभ किया। 1819 में इसने बनारस के रुपये से सिक्के ढालने का काम बंद दिया और उसके स्थान पर फरुखाबाद का रुपया परिचालित किया गया। इसका भार और शुद्धता क्रमशः 180.

234 और 135.215 ग्रेन ट्राय रखी गयी। देखने में ऐसा लगता था कि यह सही दिशा से भटक गया है। परन्तु यहां भी शुद्धता के संबंध में एक–रूपता का उद्देश्य स्पष्ट था कि इससे मद्रास और बम्बई के नए रुपयों के समान फरुखाबाद का रुपया तैयार किया गया था और इसमें 11/12 शुद्धता थी। बनारस के रुपये से छुटकारा पाकर दूसरा कदम यह था कि फरुखाबाद रुपये के मानक को मद्रास और बम्बई के मानक में आत्मसात कर दिया जाए जैसा कि आगे दी गई तालिका में दिखाया गया है।

इस प्रकार द्विधातु पद्धति रद्द किए बिना अधिकरण द्वारा प्रस्तावित आदर्श यूनिट (इकाई) को अस्तित्व में लाने के लिए ठोस कदम उठाए गए जैसा कि आगे दी गई तालिका में दिया गया है।

तालिका III

सन् 1833 की समाप्ति होने तक सिक्का निर्माण की एकरूपता

सरकार जिससे सिक्का जारी किया	चांदी के सिक्के			सोने के सिक्के			वैध अनुपात
	मूल्य	भार	शुद्धता	मूल्य-वर्ग	भार	शुद्धता	
बंगाल	सिक्का रुपया	192	176 अथवा 11/12	मोहर	204.710	187.651	1 से 15 तक
	फरुखाबाद रुपया	180	165 अथवा 11/12	-	-	-	-
बम्बई	चांदी का रुपया	180	165 अथवा 11/12	सोने का रुपया	180	165 अथवा 11/12	1 से 15 तक
मद्रास	चांदी का रुपया	180	165 अथवा 11/12	सोने का रुपया	180	165 अथवा 11/12	1 से 15 तक

1833 की समाप्ति तक जैसी स्थिति थी उसका अनुमान करते हुए हमें यह लगता है कि बंगाल में सिक्का रुपया और सोने की मोहर के सिवाय निदेशकों की योजना का वह भाग प्राप्त कर लिया गया था जिसका संबंध सिक्का ढालने की एकरूपता से था। इसको पूर्ण करने की दिशा में कुछ नहीं बचा था। केवल सिक्का रुपये को हटा देना था और सोने का विमुद्रीकरण किया जाना था। इस अवसर पर अधिकरण के निदेशकों के और तीन भारत सरकारों के बीच विरोध उत्पन्न हो गया। सोने के विमुद्रीकरण करने में काफी अनिच्छा प्रकट की गई। मद्रास की सरकार जिसने अधिकरण की योजना के अनुसार अपनी मुद्रा में सुधार कार्य को सर्वप्रथम हाथ में लिया रुपये के ढालने के साथ–साथ सोने के सिक्के ढालना जारी रखने पर जोर ही नही दिया अपितु अपने क्षेत्र में प्रचलित स्थायी अनुसात में दोहरी वैध मुद्रा की पद्धति से अलग हटने के लिए जोरदार शब्दों में इनकार कर दिया। चाहे अधिकरण द्वारा बारबार प्रतिवाद किया गया हो। बंगाल की सरकार ने दृढ़ता के साथ द्विधातु के मानक का साथ दिया। बिना अधिकरण की इस संबंध में बार–बार चेतावनी की परवाह किए बंगाल की सरकार भी द्विधातु मानक को जोर से पकड़े रही। सोने की मोहर को विभ्रमित न कर उसने मानक को ही बदलना शुरु कर दिया। शुद्ध अंतर्वस्तु 189.4037 से घटाकर 187.651 ट्राय ग्रेन कर दिया गया ताकि 1818 में मद्रास में अपनाए गए अनुपात के आधार पर द्विधातु पद्धति को पुनः स्थापित किया जाए। द्विधातु मानक के साथ उसका इनता अधिक चिपकाव था कि 1833 में इसने सिक्का रुपये के भार और शुद्धता को क्रमशः 196 ग्रेन ट्राय तथा 176 ग्रेन (शुद्धता) में परिवर्तित कर दिया। इसका शायद कारण यह हो कि मोहर और रुपये में वैध और बाजार भाव अनुपात के बीच संभावित अंतर को ठीक करना था। दूसरी ओर भारत सरकार अधिकरण की इच्छा से और अधिक आगे बढ़ना चाहती थी। अधिकरण के विचार से (अर्थात ऐसी मुद्रा जिसका निर्माण समान किन्तु स्वतंत्र इकाइयों द्वारा किया गया था) सब कुछ था जिसकी भारत को आवश्यकता थी। वास्तव में उन्होंने सरकारों को समझाया कि उनकी यह इच्छा नहीं थी कि मुद्रा के सरलीकरण के मामले में कुछ अधिक कार्य किया जाए और वे पूर्ण रूप से इस बात के इच्छुक थे कि सिक्का और मोहर का उसी प्रकार आत्मसात किए बिना रहने दिया जाए। निस्संदेह एक रूप मुद्रा का परिचालन उस व्यवस्था में जो मुगलों के उत्तराधिकारियों ने छोड़ी थी एक अग्रणी कदम था। परन्तु यह पर्याप्त नहीं था और परिस्थिति की आवश्यकता के अनुसार आम मुद्रा की मांग थी जिसका आधार एकरूप मुद्रा के स्थान पर एकल इकाई था। एक रूप मुद्रा पद्धति के अंतर्गत प्रत्येक महाप्रान्त ने अपनी ही मुद्रा में सिक्के ढाले और अन्य महाप्रान्तों की टकसालों में ढाले गए सिक्के टकसाल के सिवाय अपने क्षेत्र में वैध मुद्रा नहीं माने गए। मुद्रा की स्वतंत्रता अधिक हानिप्रद नहीं होगी यदि तीनों महाप्रांतों के बीच वित्तीय स्वतंत्रता भी बनी है। वास्तव में यद्यपि प्रत्येक महाप्रान्त में अपनी ही वित्तीय पद्धति थी तथापि वे अपने ही घाटों के वित्त के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहे। उनके बीच ''आपूर्ति'' की नियमित पद्धति थी और एक महाप्रान्त के अधिशेष की पूर्ति बराबर दूसरे महाप्रान्त के आहरण से की जाती थी ताकि अन्य क्षेत्रों में घाटे की राशियों की पूर्ति की जाए। एक आम मुद्रा के अभाव में इस संसाधन क्रिया में काफी बाधा आई। ''आपूर्ति'' क्रिया के मार्ग में आम मुद्रा के अभाव द्वारा उत्पन्न कठिनाइयों में स्वयं दो अलग–अलग तारीकों में अनुभव कराया गया। अन्य महाप्रान्तों की मुद्रा को वैध मुद्रा के रूप में उपयोग न करने के कारण प्रत्येक महाप्रान्त को वाणिज्य के घाटे तथा आत्मनिर्भर होने के लिए अधिक कार्यशील शेषों को बन्द करना पड़ा। अधिक शेष की आवश्यकता को आरोपित करने वाली पद्धति ने अन्य महाप्रान्तों की कम प्रभावोंत्पादक राहत उत्पन्न की क्योंकि यह आपूर्ति उस महाप्रान्त की मुद्रा का रूप थी जिसने उसकी स्वीकृति दी थी और इससे पूर्व कि उसका उपयोग हो पाता, जरूरतमंद महाप्रान्त की मुद्रा को फिर से सिक्कों में ढालना पड़ता। फिर से सिक्कों के ढालने से न केवल हानि हुई अपितु इस पद्धति से स्पष्टतया सौदागरों को असुविधा तथा सरकार को लज्जा का सामना करना पड़ा।

1833 की समाप्ति पर स्थिति यह थी कि अधिकरण ने यह इच्छा व्यक्त की कि चांदी के एकल मानक के साथ एकरूप मुद्रा रखी जाए जबकि भारत के अधिकारियों ने द्विधातु मानक के साथ आम मुद्रा की इच्छा व्यक्त की। चाहे ये अलग–अलग विचार कुछ भी क्यों न हों मुद्रा की वास्तविक स्थिति बराबर रहती। दोनों ओर किसी ठोस परिवर्तन के बिना भी यों ही चलती रहती। 1833 में भारत के तीनों महाप्रान्तों की सरकारों के मध्य प्रशासनिक संबंधों में महत्वपूर्ण संवैधानिक परिवर्तन हुआ। उस वर्ष संसद के एक अधिनियम द्वारा प्रशासन में साम्राज्यवादी पद्धति स्थापित की गई जिसके अनुसार समस्त भारत में सभी विधायकी और कार्यकारी प्राधिकार का केंद्रीकरण किया गया। इस प्रशासकीय पद्धति के परिवर्तन के कारण प्रचलित मुद्रा पद्धतियों में परिवर्तन भी करना पड़ा। इसके अनुसार स्थानीय सिक्कों के स्थान पर साम्राज्यवादी सिक्के लाए गए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इसने आम मुद्रा को एकरूप मुद्रा के स्थान में अधिक बढ़ा दिया। भारत के प्राधिकारियों ने घटनाचक्र की शक्ति को स्वीकारने में कोई देरी नहीं की। संसद द्वारा स्थापित साम्राज्यवादी सरकार मुगलों के दीवान अथवा दलाल के रूप में कार्य करने से संतुष्ट नहीं थी जैसा कि अंग्रेस अब तक करते आए थे, उन्होंने इस बात को पसंद नहीं किया कि सिक्कों को उन मृतप्राय मुगल सम्राटों के नाम पर जारी किया जाय जो अब शासन नहीं करते। वह इस बात के लिए आतुर थी कि झूठा चोगा उतार फेंका जाए और अपने ही नाम का साम्राज्यवादी सिक्का जारी किया जाए जो समस्त भारत के लिए समान हो जो समान आधिपत्य का प्रतीक होगा तदनुसार इस नीति को कार्य रूप में परिणित करने के लिए जल्दी ही कदम उठाए गए। साम्राज्यवादी सरकार के अधिनियम (1835 के 17) द्वारा समस्त भारत के लिए आम सिक्का जो एक मात्र विधिमान्य चलार्थ था लाया गया। परन्तु साम्राज्यवादी सरकार इससे भी आगे बढ़ गई और जैसे कि वह अधिकरण को कोई छूट दे रही हो क्योंकि अधिकरण ने इस आम मुद्रा के विरुद्ध जोरदार विरोध किया जहां तक इसने सिक्का रुपये को विस्थापित किया और कानून बनाया कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकार क्षेत्र में से आगे से सोने के सिक्के को विधिमान्य चलार्थ नहीं माना जाएगा।

यह बात बिल्कुल समझने योग्य है कि साम्राज्यवादी प्रशासन को आवश्यकता की मांग के अनुसार भारत भर के लिए आम मुद्रा की स्थापना की ओर अग्रसर होना पड़ा। परन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि उसने द्वि–धातु की पद्धति को क्यों समाप्त कर दिया जबकि इतने अधिक समय से उसका परिचालन होता रहा था। वास्तव में जब इस बात का स्मरण किया जाए द्वि–धातु पद्धति के समाप्त करने के विरुद्ध अधिकारियों ने किस प्रकार विद्रोह किया और वे कितनी सावधानी बरतते कि अधिक उग्रता से उल्लंघन उनके सिक्कों की सुधार की प्रक्रिया इसमें जहां तक संभव हो क्रान्तिकारी परिवर्तन न लाए, सोने के विमुद्रीकरण सम्बन्धी अधिनियम की धारा एक दुखद आश्चर्य थी फिर भी अकस्मात पलटा खाने के लिए मुद्रा अधिनियम (1835) का 17 भारतीय इतिहास के आख्यान में स्मरण रहेगा इसने मुद्रा–सुधार के दीर्घकालीन और कठोर परिश्रम की प्रक्रिया के चरम बिंदु पर पहुंचा दिया तथा इसने भारत को चांदी के एक धातु वाले सिक्के का आधार बना दिया जिससे रुपये का भार 180 ग्रेन ट्राय और 165 ग्रेन शुद्धता रही जो देश भर में आम मुद्रा और एकाकी विधिमान्य रूप में प्रचलित हुई।

ब्रिटिश भारत के किसी भी विधान ने आने वाले वर्षों में इतना असंतोष उत्पन्न नहीं किया जितना कि 1835 के संख्या 17 अधिनियम ने किया। जहां तक अधिनियम ने द्विधातु पद्धति को रद्द किया, और सभी ने एकम से इसे आश्चर्य से देखा। फिर भी इसके सभी आलोचक इस बात से अवगत नहीं है कि इस अधिनियम ने मुख्यतया जो निर्णय दिया उसका संबंध द्विधातु–मुद्रा के उत्थान पर एकल धातु मुद्रा का प्रचलन करना था। इस अधिनियम के बारे में आय राय थी कि इसने सोने के मानक के स्थान पर चांदी का मानक ला दिया परन्तु यदि इसकी सच्चाई के बारे में सामान्य रूप से अधिक ब्रोयोसे मानक भी हो तो भी इसके प्रति शत्रुता का व्यवहार किसी भी तरह न्यायसंगत नहीं होगा। 19वीं शताब्दी के मध्य में कैलीफोर्निया और आस्ट्रेलिया की स्वर्ण–खोजों का भारत के लिए क्या लाभ होता यदि उसने अपनी द्विधातु पद्धति को सुरक्षित रखना था? यह भली–भाँति विदित है कि चाँदी की तुलना में सोने के उत्पाद की वृद्धि से टकसाल में विविधता और वर्ष 1850 के बाद दोनों धातुओं के बाजार–अनुपातों में विविधता आई। चांदी की कमी का मूल्यांकन अधिक नहीं था फिर भी उस गंभीर स्थिति में द्विधातु अपनाने वाले देशों को गंभीर रूप से सामना करना था। इस स्थिति में जिसमें छोटे सिक्के समेत चांदी की मुद्रा तीव्र गति से परिचालन से बाहर हो रही थी। अमरीका 1853 के कानून द्वारा इस बात के लिए बाध्य हो गया कि अपने छोटे चांदी के सिक्के के मानक को काफी कम कर दे ताकि डालर के बदले डालर का आकलन किया जाए जो उनके सोने के मूल्य से कम हो जिसके फलस्वरूप सिक्कों का परिचालन होता। फ्रांस, स्विट्जरलैंड और इटली में पारस्परिक वैध सिक्के के साथ फ्रांस के द्विधातु के मॉडल के आधार पर ऐसी एकरूप मुद्रा थी जिसे इसी प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। कहीं ऐसा न हो कि प्रत्येक देश यानी अपनी चांदी की मुद्रा और विशेषकर छोटे सिक्कों को बचाने की अलग–अलग नीति के कारण वहां प्रचलित मुद्रा की सामंजस्यता अस्त–व्यस्त हो जाए और वे 20 नम्बर 1865 को एक अधिवेशन में मिलने के लिए बाध्य हो गए ताकि पार्टियों को सामूहिक रूप से लेटिन यूनियन के नाते सिक्कों के परिचालन में 2 फ्रैंक के चांदी के सिक्के, एक फ्रैंक, 50 सेंटाइम और 900/1000 शुद्धता से 835/1000 शुद्धता के मानक से 20 सेंटाइम तक घटा लें और उन्हें सहायक सिक्के बना लें। विधिमान्य चलार्थ की शक्ति को निरस्त कर दिया।

यह सत्य है कि सोने और चांदी के परस्पर मूल्यों में उथल–पुथल के फलस्वरूप भारत सरकार भी मुश्किल में पड़ गई परन्तु यह कष्ट भारत सरकार को स्वयं की मूर्खता के कारण हुआ 1835 के मुद्रा कानून में सोने के मुक्त सिक्का–ढलाई के लिए टकसालों को बंद नहीं किया था जिसका कारण शायद यह था कि सोने के सिक्कों की ढलाई सामन्ती कर राजस्व–प्राप्ति का एक स्त्रोत था जिसे सरकार छोड़ना नहीं चाहती थी किन्तु सोने का वैध सिक्का विधिमान्य चलार्थ नहीं था अतः सोने के सिक्के ढालने के लिए टकसाल में नहीं लाया और साम्राज्यवादी देय राशि सिक्के की ढलाई से प्राप्त न होने से सरकारी राजस्व में गिरावट आ गयी। राजस्व की इस कमी को दूर करने के लिए सरकार ने सोने के सिक्कों की ढलाई को प्रोत्साहित करने के लिए कदम उठाए। सर्वप्रथम 1837 में साम्राज्यवादी देय राशि दो प्रतिशत से कम करके एक प्रतिशत कर दी गई परन्तु यह साधन इतना पर्याप्त नहीं था कि लोगों को टकसाल तक सोना लाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए जिसके फलस्वरूप साम्राज्यवादी देय राशि में वृद्धि नहीं हो सकी। इसकी दिशा में एक अन्य कदम उठाया गया, सरकार ने 13 जनवरी, 1841 को यह अधिकार दिया गया कि वे 15 चांदी के रूपये के बराबर एक सोने की मोहर की दर पर सोने के सिक्के प्राप्त करें। कुछ समय तक कोई सोना प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि घोषणा द्वारा निर्धारित दर पर सोने का मूल्यांकन कम किया गया था। परन्तु आस्ट्रेलिया और केलीफोर्निया में सोने की खोजों ने इस स्थिति को बिल्कुल ही बदल दिया। सोने की मोहर का मूल्यांकन 15 रुपये की दर से करके उसका मूल्यांकन कम कर दिया गया था और अब सोने का अधिक मूल्यांकन किया गया तथा सरकार जो इस बात की उत्सुक थी कि सोना प्राप्त किया जाए। वही सरकार सोने के भारी मात्रा में आने से घबरा गई। सरकार ने एक ऐसे मार्ग का अनुसरण किया जिसके अनुसार एक ओर तो सोने के सिक्के को विधिमान्य चलार्थ मानने की घोषणा रद्द कर दी गई और दूसरी ओर सरकारी मांगों के परिसमापन के लिए सोना लेना प्रारंभ कर दिया गया। एक सिक्के ने सरकार को एक लज्जाजनक नुकसान की स्थिति में रख दिया, वह सिक्का जिसका कोई मूल्य नहीं था और जिसे अपने मूल्य से अधिक भुगतान सामान्यतया किया गया होगा। अपनी स्थिति का बोध होने पर सरकार ने सिक्कों की अधिक ढलाई द्वारा राजस्व की

वृद्धि के सभी विचार त्याग दिए और 25 दिसम्बर, 1852 को शीघ्र ही एक अन्य घोषणा जारी की जिसके फलस्वरूप 1841 की घोषणा को वापस ले लिया गया। क्या वह अच्छा नहीं होता कि सोने के सिक्के को सामान्य विधिमान्य चलार्थ बनाकर इस अपमान से बच निकलने के बजाय उसकी आंशिक विधिमान्य चलार्थ शक्ति से उसे वंचित किया गया, परन्तु जहां तक भारत का संबंध है, भारत उन परीक्षणों और विपत्तियों से बचा रहा जिन्हें द्विधातु पद्धति मानने वाले उन देशों ने उठाया था जो अपनी मुद्रा के चांदी के सिक्कों को आरक्षित करना चाहते थे, ऐसी स्थिति में द्विधातु पद्धति का निरस्त करना कोई छोटा लाभ नहीं था। इस कमद में वे महान गुण थे जिसने देश को उन आने वाले परिवर्तनों से सचेत कर दिया जो भले ही उस समय दिखाई नहीं दिए किन्तु जल्दी ही सामने आ गए।

भारत में द्विधातुवाद को रद्द किए जाने का कार्य 1835 के अधिनियम द्वारा सम्पन्न हुआ। अतः इस कार्य को निंदा का आधार नहीं बनाया जा सकता। परन्तु यह बात बहस का मुद्दा हो सकती है कि द्विधातुवाद की भर्त्सना चांदी के एकल धातुवाद के औचित्य का स्वतः प्रमाण नहीं है। यदि एकल धातुवाद को ही अपनाना था तो सोने के एकल धातुवाद को भी स्वीकार किया जा सकता था। वास्तव में चांदी के एकल धातुवाद को वरीयता देना कुछ विचित्र सा नहीं लगता जब हम स्मरण करते हैं कि एकल धातुवाद के समर्थक लार्ड लिवरपूल के सिद्धान्त अधिकरण ने भारत में लागू करने चाहे थे। इंग्लैंड में तत्कालीन इसी प्रकार की मुद्रा के दोषों के खिलाफ उन्होंने सोने के एकल धातुवाद को निर्धारित किया था। अधिकरण इस मामले में अपने मार्गदर्शन से हटना स्वाभाविक रूप से इस गम्भीर पथ भ्रष्ट होने के औचित्य पर बहुत अधिक उत्तेजित कटु आलोचना हुई। प्रारंभ में किसी की निष्ठा पर अंगुली उठाना बिल्कुल निराधार है। क्योंकि लार्ड लिवरपूल 'स्वर्ण कीट' नहीं थे और ना ही अधिकरण के लोग 'रजत मानव' थे। वास्तव में इनमें से किसी ने भी इस विचार से इस प्रश्न पर नहीं सोचा कि सोना अथवा चांदी में से किसका अधिक मान मूल्य है। वास्तव में जहां तक विचारणीय प्रश्न ध्यान देने योग्य था वह है अधिकरण की पसन्द, जो तत्कालीन विचारधारा के अनुसार निसन्देह लार्ड लिवरपूल के विचारों से कहीं अधिक अच्छा विकल्प था। न केवल सभी सिद्धांतवादी जैसे कि लॉर्ड हैरिस जो पेटरी चांदी के मानक मूल्य के पक्ष में थे। परन्तु समस्त विश्व में व्यावहारिक रूप से चांदी का ही समर्थन किया गया था। इसमें कोई संदेह नहीं कि इंग्लैंड ने 1816 में स्वयं को सोने के आधार पर रख लिया था परन्तु चांदी के सिक्के मुक्त भाव से ढालने के लिए अंग्रेजी टकसाल बंद करने से कहीं दूर वह अधिनियम शाही घोषणा द्वारा कार्यान्वित किए जाने के हेतु बना रहा। यह सत्य है कि इस प्रकार की कोई घोषणा कभी जारी नहीं की गई परन्तु इस बात का भी अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि तत्कालीन अंग्रेजो ने मानक के प्रश्न को निर्धारित करने में मामले के रूप में स्वीकार कर लिया है। 1825 के संकट से यह विदित हुआ कि सोने के मानक ने सरलता से कार्य करने के लिए अंग्रेजी मुद्रा पद्धति के लिए संकीर्ण आधार प्रस्तुत किया और उस समय के विशेषज्ञों के मतानुसार सोने के मानक इंग्लैंड की वाणिज्यिक वरीयता के मामले से कहीं दूर उस देश की समृद्धि के लिए अवरोध था क्योंकि इसने अपने को शेष विश्व से अलग कर लिया था जो अधिकांशतया चांदी के आधार पर था। यहां तक कि उस समय के अंग्रेजी राजनेताओं ने सोने के मानक की वरीयता के संबंध में निर्णय नहीं किया था। 1826 में हस्किसन ने वास्तव में यह प्रस्ताव किया कि सरकार को पूर्व विधिमान्य चलार्थ के चांदी के प्रमाण पत्र जारी करने चाहिए। यहां तक कि 1844 तक मानक के प्रश्न पर कोई समझौता नहीं हो पाया क्योंकि हम देखते है कि पील के मंत्रिमंडल को दिए ज्ञापन में चांदी अथवा द्विधातु मानक के पक्ष में किसी भी प्रकार कोई पश्चाताप अथवा पूर्वाभिरूचि से सोने के मानक को त्यागने की संभावना पर विचार किया गया था। वित्तीय अलगाव की कठिनाइयां स्पष्ट रूप से इतनी अजेय नहीं थी कि मानक में परिवर्तन के लिए बाध्य होना पड़े, परन्तु वे इतनी विकराल थीं कि पील को बाध्य होना पड़ा कि उन्होंने बैंक चार्टर एक्ट, 1844 में आंशिक रूप से हरिन्कसन की योजना को सम्मिलित करते हुए अपना प्रसिद्ध प्रतिबंध शामिल किया था और चांदी की तुलना में नोटों के जारी करने की अनुमति दी गई तथा जारी की गई मुद्रा का चौथाई अंश रखा गया। वास्तव में चांदी की स्थिरता के बारे में व्यापक रूप से इतना अधिक विश्वास था कि 1847 में हॉलैंड ने व्यावहारिक रूप से सोने के एकल धातुवाद के स्थान पर चांदी के एकल धातुवाद को बदल लिया क्योंकि उनके राजनेताओं का विश्वास थाः–

''इग्लैंड के समान हॉलैंड में मुद्रा पद्धति अपनाए जाने से वाणिज्यिक और औद्योगिक हितों के लिए विनाशपूर्ण सिद्ध हुई। सोने के मानक की स्वीकृति के बाद इस पद्धति के वित्तीय संबंधी आकस्मिक भाव–परिवर्तन किसी भी अन्य देश की तुलना में अधिक बार–बार और गंभीर हुए और इसके अनिष्टकारी प्रभाव इंग्लैंड की तुलना में हॉलैंड में थोड़े कम महसूस किए गए। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि चांदी के मानक की स्वीकृति से इंग्लैंड को इस बात से अलग रखा जाएगा कि वह इस प्रकार के आकस्मिक भाव–परिवर्तन के दौरान अपनी मुद्रा को हटाने से हॉलैंड के आंतरिक व्यापार में उथल–पुथल नहीं होगी तथा उन अवगुणों से उन्मुक्ति मिलेगी जो हॉलैंड में पैदा नहीं हुए थे और जिनके लिए हॉलैंड उत्तरदायी नहीं था।''

परन्तु स्थायित्व ही ऐसा आधार नहीं था जिसके द्वारा अधिकरण अथवा लॉर्ड लिवरपूल ने अन्य धातुओं की तुलना में मानक धातु को अपना विकल्प बनाया। यदि ऐसा ही मामला होता तो शायद दोनों ने ही चांदी का चयन किया होता। जैसी की स्थिति थी, दोनों पक्षों के विकल्प का अन्तर केवल उथला था, अधिकरण का लॉर्ड लिवरपूल से मतभेद था इसमें कोई खराब इरादा नहीं था परन्तु वे दोनों एक आधारभूत प्रस्ताव पर सहमत हो गए थे कि मानक धातु के चयन में ही नहीं अपितु लोकप्रिय वरीयता भी निर्णायक थी। इस समझौते के कारक या तर्कसंगत रूप से उनमें उत्तर दिखने लगे। मुद्रा से सम्मिश्रण का विश्लेषण करने पर यह पता लगा कि इंग्लैंड में अधिकांशतया मुद्रा सोने में बनाई गई थी और भारत में अधिकतर मुद्रा चांदी में बनाई गई थी। यदि उनके आधार वाक्य को स्वीकार कर लिया जाए तो यह बताना सरल काम है कि लिवरपूल द्वारा इंग्लैंड में सोने को क्यों चुना गया और अधिकरण द्वारा भारत में चांदी को क्यों चुना गया। क्या मुद्रा का वास्तविक मिश्रण लोकप्रिय वरीयता का साक्ष्य है, इस बात को उस हठधर्मिता से नहीं कहा जा सकता जैसे कि अधिकरण और लार्ड लिवरपूल द्वारा किया गया था। जहां तक इंग्लैंड का संबंध है, लॉर्ड लिवरपूल की व्याख्या के बारे में महान अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो ने प्रश्न चिन्ह लगाया है। रिकार्डो ने अपने ''हाई प्राइस ऑफ बुलियन'' में लिखा है –

''लार्ड लिवरपूल ने अनेक कारण दिये जिनके अनुसार बिना किसी मतभेद से यह सिद्ध हो जाता है कि सोने का सिक्का लगभग एक शताब्दी से मूल्य का प्रमुख साधन रहा है परन्तु मेरे विचार से इसका श्रेय टकसाल के गलत अनुपातों को जाता है, सोने का बहुत अधिक मूल्य रखा गया, इसलिए चांदी अपने मानक पर भी परिचालन में रह सकती है। यदि नया विनिमय बनाया जाता और चांदी का मूल्य अधिक होता तब सोना लोप हो जाता और चांदी मानक सिक्का बन जाती और यह संभव है कि लोकप्रिय वरीयता को नहीं वरन टकसाल के अनुपात के कारण भारत में चांदी के प्रावल्य प्रचलन का कारण रहा होगा।

क्या लोकप्रियता के अलावा कोई अन्य कसौटी थी जो सोने के एकल धातुवाद के स्वीकार करने के लिए वरीयता बनी, यह विविदास्पद प्रश्न है। यह कहना पर्याप्त है कि चांदी के एकल धातुवाद का स्वीकार करना देश की आवश्यकताओ के लिए नितांत अपर्याप्त सिद्ध हुआ। यद्यपि जब वह अधिनियम बना उस समय इसका अच्छा समर्थन था। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इसी समय भारत के लोगों की अर्थव्यवस्था में महान परिवर्तन आ रहे थे। इस प्रकार का परिवर्तन वस्तुओं के आदान–प्रदान की अर्थव्यवस्था के स्थान पर रुपये के लेन–देन की अर्थव्यवस्था स्थापित करने के लिए था।

इस कायापलट में सहायक मुख्य कारणों में प्रथम स्थान राजस्व और वित्त की ब्रिटिश पद्धति को दिया जाना चाहिए। भारतीय समाज को रोकड़, अभिबंध में परिवर्तित करने के प्रभाव पर्याप्त रूप से अनुभव नहीं किए गए हैं यद्यपि वे अत्यंत वास्तविक थे। देशी शासकों के अधीन अधिकांश भुगतान वस्तुओं में किए जाते थे। सरकार द्वारा स्थायी सैन्य शक्ति बनाए रखी गई और नियमित रूप से उसके लिए भुगतान किया गया परन्तु यह सैन्य शक्ति अल्प मात्रा में थी। प्रादेशिक सेना के अधिकांश सिपाही जागीरदारों और अन्य जमीदारों द्वारा उपलब्ध कराए जाते थे तथा इन सामंतों के सैनिक अथवा परिचर अधिकांशतया अनाज, चारा और अन्य वस्तुओं पर रखे जाते थे जिन्हें उन जिलों द्वारा उपलब्ध करया जाता था जहां वे रहते थे। वंशानुगत राज्य और पुलिस अधिकारियों को सामान्यतया सेना की अवधि के अनुसार भूमि के अनुदान द्वारा भुगतान किया जाता था। खेतों में काम करने वाले नौकरों और मजदूरों की मजदूरी अनाज द्वारा चुकाई जाती थी। राज्य के अधिकांश अधिकारियों को माल में भुगतान किया जाता था और राज्य सरकार अपने करों को बहुत कम रोकड़ में वसूल कर पाती थी। अंग्रेजी शासन के इस अपरिष्कृत राजस्व और वित्तीय पद्धति में किए गए नव–प्रयोग अत्यन्त व्यापक प्रकार के थे। जैसे ही अंग्रेजी शासन के अधीन एक राज्य क्षेत्र से लेकर दूसरा राज्य क्षेत्र आता गया, सबसे पहले कदम यह उठाया गया कि जमीदारों के ग्रामीण सैनिकों के स्थान पर नियमित रूप से गठित और अनुशासित स्थायी सेना बदल दी गई और इस सेना को अलग–अलग सेन्य शहरों पर तैनात कर दिया गया तथा उन्हें नकदी में भुगतान किया गया, सेना के समान असैनिक कर्मचारियों, पूर्व राजस्व तथा अनुचरों सहित पुलिस अधिकारियों को उपलब्धियों तथा माल में प्राप्त अन्य अप्रत्यक्ष लाभ द्वारा भुगतान किया जाता था। इन अधिकारियों के स्थान पर राजस्व अधिकारियों और दण्डाधिकारियों को उनके अधिक से अधिक कर्मचारियों के साथ बदल दिया गया और उनको चालू सिक्के दिए गए। सेना, पुलिस और अन्य कर्मचारियों के ही भुगतान नहीं थे जिन्हे अंग्रेजी सरकार ने सिक्कों के आधार पर रखा इन प्रभारों के अलावा अन्य प्रभार भी थे जो देशी सरकारों की जानकारी में नहीं थे यथा ''गृह प्रभार'' और ''लोक ऋण पर ब्याज'' और ये सभी रोकड़ के आधार पर थे। राज्य ने नकदी में भुगतान शुरु कर दिया। अतः राज्य सभी करों को नकदी में वसूल करने के लिए बाध्य हो गया और प्रत्येक नागरिक नकदी में अदा करने पर बाध्य हो गया। नागरिक ने भी बदले में नकदी मिलने का आग्रह किया अतः समाज की संपूर्ण संरचना की पूरी कायापलट हो गयी।

भारत के लोगों के अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि इस समय व्यापार में अत्यन्त वृद्धि हुई। काफी समय तक अंग्रेजों की कर–नीति और नौचालन के कानून ने भारतीय व्यापार की वृद्धि पर भारी अंकुश लगा दिया। इंग्लैंड ने भारत को इस बात पर बाध्य किया कि भारत इंग्लैंड की कपास और अन्य निर्मित वस्तुओं को नाममात्र (2½ प्रतिशत) शुल्क पर ले परन्तु इसके साथ ही इंग्लैंड ने भारत की उन वस्तुओं के प्रवेश पर विषेधाज्ञा लगा दी जो भारत के राज्य क्षेत्र में तैयार की जाती थी और उन पर 50 से 500 प्रतिशत का निषेधात्मक शुल्क लगाया जाता था। इंग्लैंड ने भारत के साथ कोई भी आदान–प्रदान नहीं किया परन्तु इंग्लैंड ने अपने अन्य उपनिवेशों के साथ उन वस्तुओं के लिए भेद–भाव रखा जो उन उपनिवेशों में तैयार की जाती थी। इंग्लैंड के अनुचित व्यवहार के विरुद्ध भारी आन्दोलन शुरु किया गया और अंत में सर रॉबर्ट पील ने 1842 की संशोधित कर पद्धति द्वारा लगाए गए कम करों को भारत के उत्पादों के लिए स्वीकार कर लिया। नौचालन के कानून को निरस्त करने से भारतीय वाणिज्य के विस्तार को अधिक प्रोत्साहन मिला। इसके साथ ही भारतीय उत्पादों की मांग भी बढ़ने लगी। 1854 के क्रीमियन युद्ध ने रूस की आपूर्तियों को रोक दिया और उनके स्थान पर भारतीय उत्पाद लिए जाने लगे तथा 1853 में युरोप भर में रेशम की फलस के खराब होने के फलस्वरूप एशिया तथा भारत के रेशम की मांग बढ़ गई।

इन दोनों परिवर्तनों का प्रभाव मुद्रा संबंधी स्थिति पर स्पष्ट ही था। दोनों ने ही नकदी की अधिक मांग की। परन्तु नकदी को प्राप्त करना कठिन कार्य था। भारत काफी मात्रा में बहुमूल्य धातुएं उत्पन्न नहीं करता। उसे इन धातुओं के प्राप्त करने के लिए अपने व्यापार पर निर्भर रहना पड़ता था। यूरोपीय शक्तियों के आगमन के कारण भारत बहुमूल्य धातुओं के एि पर्याप्त साधन नहीं जुटा सकता था। उस समय यूरोप में प्रचलित बहुमूल्य धातुओं के निर्यात पर निषेधाज्ञा लगी हुई थी अतः उन्हें प्राप्त करने का एक मार्ग बन्द हो गया। परन्तु यूरोप से बहुमूल्य धातुओं के प्राप्त करने का बहुत कम अवसर था और इस निषेध के न होने पर भी वास्वत मे बहुमूल्य धातुएं भारत में नहीं आई जब ऐसी निषेधाज्ञाएं हटा ली गई। बहुमूल्य धातुओं के अंतः प्रवाह के रोकने का कारण श्री पेट्री द्वारा अपने नबम्बर, 1799 के कार्यवृत में मद्रास स्थित सुधार की समिति (मद्रास कमेटी आफ रिफोर्म) में भलीभांति बताया गया है। श्री पेट्री के अनुसार यूरोपवासियों ने अपने राज्य क्षेत्रों के प्राप्त करने से पूर्व यूरोप की धातुओं से भारत की बनी वस्तुओं को खरीदा। परन्तु उन्होंने भारत की चांदी और सोने से इन खरीदों को आगे बढ़ाया, राजस्व में विदेश सर्राफे के स्थान की पूर्ति की और अपनी ही मुद्रा से अपने उद्योग का मूल्य सहजभाव से अदा किया। सर्वप्रथम वाणिज्य के सिद्धान्तों में इस क्रान्ति का बहुत कम अनुभव हुआ परन्तु जब अंग्रेजों ने समृद्ध तथा विस्तृत राज्यों को अपने हाथ में ले लिया और जब युद्ध तथा वाणिज्यिक प्रतियोगिता की सफलता ने अन्य यूरोपीय राष्ट्रों से इस प्रकार निर्धारित वरीयता प्रदान की ताकि पूर्व के कुल वाणिज्य पर एकधिकार हो जाए तथा जब पूर्व की निर्मित वस्तुओं के लिए यूरोप को प्रतिवर्ष लाखों की राशि भिजवाएं जानी थी, उस समय भारत के प्रत्येक भाग में इस क्रान्ति के घातक परिणाम देखे गए। ऐसी प्रचुर जल–धारा से वंचित होने

के बाद नदी शीघ्र ही अपने किनारों से हट गई तथा अपने अधिक बहते हुए जल से समीपी खेतों को उर्वर बनाना बंद कर दिया।''

अब केवल यही मार्ग खुला था और जब बहुमूल्य धातुओं की प्राप्ति के लिए निषेधाज्ञाओं को हटाया गया तब इस कर की राशि की अपेक्षा अधिक सामान भेजना था ताकि उनमें संतुलन लाया जा सके। यह भी संभव हुआ जब पील ने भारतीय सामान को कम कर पर स्वीकार किया तथा देश प्रथम बार अपनी बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुमूल्य धातुओं की प्रचुर मात्रा लेने में समर्थ हो पाया। परन्तु मुद्रा के रूप में काम करने के लिए इन बहुमूल्य पदार्थों की आपूर्ति की सुविधा अल्पकाल की थी। 1850 के बाद की कठिनाइयां बहुमूल्य धातुओं के प्राप्त करने के लिए भारत के मार्ग में अवरोध नहीं बनीं। अवरोध तो दूर रहा, बहुमूल्य धातुओं का निर्यात और आयात पूर्ण रूप से स्वतंत्र था तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए भारत की क्षमता भी काफी थी। बहुमूल्य धातुओं की किसी प्रकार की कोई कमी की कठिनाई नहीं थी क्योंकि तथ्य यह था कि 1850 के बाद बहुमूल्य धातुओं की वृद्धि काफी थी। इस कठिनाई के लिए भी स्वयं भारत उत्तरदायी था तथा इसका कारण यह था कि भारत ने उसे बहुमूल्य धातु पर अपनी मुद्रा को आधारित नहीं किया था। जो वह सरलता से प्राप्त कर सकता था। 1835 के अधिनियम को भारत के नितांत चांदी के आधार पर रख दिया परन्तु दुर्भाग्यवश 1850 के बाद ऐसा हुआ यद्यपि बहुमूल्य धातुओं के कुल उत्पाद में वृद्धि हुई जबकि विश्व की आवश्यकताओं के अनुसार चांदी में वृद्धि नहीं हुई तथा उसका अधिकांश भाग चांदी पर आधारित था अतः भारत अपनी मुद्रा के कानून के फलस्वरूप मुद्रा के संकुलन के साथ फैलते व्यापार की अजीब सी स्थिति में फंसा रहा जैसा कि पृष्ठ 31 की तालिका IV में दिखाया गया है।

तालिका IV*

व्यापार और मुद्रा

वर्ष	वाणिज्य वस्तु: आयात पौंड	वाणिज्य वस्तु: निर्यात पौंड	खजाना केवल आयात: चांदी पौंड	खजाना केवल आयात: सोना पौंड	कुल सिक्के: चांदी पौंड	कुल सिक्के: सोना पौंड	आयात पर सिक्कों की कमी वृद्धि+ अथवा कमी–: चांदी पौंड	आयात पर सिक्कों की कमी वृद्धि+ अथवा कमी–: सोना पौंड	वार्षिक उत्पादन: सोना पौंड	वार्षिक उत्पादन: चांदी पौंड
1850-51	11,558,789	18,164,150	2,117,225	1,153,294	3,557,906	1,237,17	+1,440,681	-1,029,577	8,9	7,8
1851-52	12,240,490	19,879,406	2,865,357	1,267,357	5,170,014	62,553	+2,304,657	-1,205 060	13,5	8,0
1852-53	10,070,863	20,464,633	3,605,024	1,172,301	5,902,648	—	+2,297,624	-1,172,301	36,6	8,1
1853-54	11,122,659	19,295,139	2,305,744	1,061,443	5,888,217	145,679	+3,582,473	-915,764	31,1	8,1
1854-55	12,724,671	18,927,222	29,600	731,490	1,890,055	2,676	+1,860,455	-728,814	25,5	8,1
1855-56	13,943,494	23,038,259	8,194,375	2,506,245	7,322,871	167,863	+871,504	-2,338,382	27,0	8,1
1856-57	14,194,587	25,338,451	11,073,247	2,091,214	11,220,014	128,302	+146,767	-1,962,912	29,5	8,2
1857-58	15,277,629	27,456,036	12,218,948	2,783,073	12,655,308	43,783	+436,360	-2,739,290	26,7	8,1
1858-59	21,728,579	29,862871	7,728,342	4,426,453	6,641,548	132,273	+1,086,794	-4,294,180	24,9	8,1
1859-60	24,265,140	27,960,203	11,147,563	4,284,234	10,753,068	64,307	+394,495	-4,219,927	25,0	8,2

देखने में ऐसा लगता है कि मुद्रा की कठिनाई नहीं होनी चाहिए थी। चांदी का अधिक आयात था वही स्थिति इसके सिक्कों की भी थी। ऐसी स्थिति में कठिनाई क्यों हो गई? इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। यदि चांदी के ढाले गए सिक्कों का परिचालन बनाए रखा गया होता तो संभव है कि यह कठिनाई की स्थिति पैदा न होती। भारत पहले ही से बहुमूल्य धातुओं के रखने के लिए बदनाम है। परन्तु इस प्रक्रिया की व्याख्या के लिए श्री कैसेल्स द्वारा दी गई चेतावनी को याद रखना होगा, जो इस प्रकार हैः

''इसके चांदी के सिक्कों को विनिमय के माध्यम के रूप में वाणिज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति ही नहीं करनी थी अपितु चांदी के आभूषण आदि बनाने वाले और सुनार के लिए उस धातु के पर्याप्त रूप से आपूर्ति करने की आवश्यकता थी। टकसाल को प्रगलन भट्टी के मुकाबले पर खड़ा कर दिया गया है। एक के द्वारा इतने अध्यवसाय व कौशल द्वारा बनाए गए सिक्के दूसरे न उन्हें जल्दी से गलाकर कड़ बनवा दिए।

दिए गए आंकड़ों से यह विवित होगा कि सभी आयात की गई चांदी से सिक्के बनाए गए तथा उन्हें मुद्रा के प्रयोजनों के लिए उपयोग किया गया। लोगों के औद्योगिक और सामाजिक उपभोग के निमित्त चांदी बहुत कम या न के बराबर रखी गई। ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट है कि सिक्के में ढाली गई चांदी का अधिकांश भाग मुद्रा से गैर–मुद्रा के प्रयोजनों के लिए निकाला गया। इस प्रकार इस मुद्रा के अभाव का गुप्त स्त्रोत स्पष्ट हो जाता है। उस समय के लोगों को यह बिल्कुल स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि मुद्रा से और मुद्रा के प्रयोजनों के लिए मुद्रा के अवशोषण की दर थी जो इसके लिए उत्तरदायी थी। उसी अधिकार का कथन उद्धत है :–

''अधिक आयात के बावजूद मुद्रा की मांग अभी इतनी बढ़ गई .... कि गंभीर लज्जाजनक स्थिति में यह आश्वस्त किया तथा परिचालित माध्यम के अभाव के कारण व्यापार लगभग ठप हो गया। जैसे ही शीघ्रता से रूपये सिक्कों में ढाले गए वे सिक्के उतनी ही तेजी से अन्दरूनी हिस्सों में ले जाए गए और वहां से वे सिक्के परिचालन से लुप्त हो गए, या तो वे सिक्के भंडार के लिए उपयोग में आए अथवा गहने बनाने के लिए उनको गलाया गया।

एक मार्ग खुला हुआ था जिसके द्वारा चांदी का अतिरिक्त आयात किया जाता जो देश की मुद्रा तथा गैर–मुद्रा की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त हो सकता। परन्तु चांदी का आयात शायद पहले ही से अपने चरम बिन्दु पर था। क्योंकि जैसे कि मि० सेसेल्स ने इस बारे में तर्क दिया था :–

''समस्त विश्व की चांदी का वार्षिक उत्पादन दस मिलियन स्टर्लिंग से अधिक नहीं हुआ। पिछले कुछ वर्षों से अकेले भारत ने ही प्रतिवर्ष समस्त विश्व में पैदा की गई धातु से अधिक धातु ली है और उसके अधिकांश भाग का उपयोग किया है। यह स्पष्ट है कि यह स्थिति अधिक समय तक भयंकर उलझन पैदा किए नहीं चल सकती है। या तो यूरोपीय बाजार हमें देने के लिए असमर्थ है या हमें देने में आनाकानी करेंगे अथवा अनिच्छुक हैं अथवा चांदी के मूल्य आसमान छूने लगेंगे। ऐसी परिस्थितियों में इसका अनुमान लगाना कठिन कार्य नहीं है कि वर्तमान संकट बराबर चलता रहेगा और इस देश का वाणिज्य यदि स्थायी तौर पर नहीं होता तो कुछ समय के लिए परिचालित माध्यम के अभाव से पंगु होता जाएगा।

यदि ऋण–माध्यम होता तो मुद्रा का संकुचन इतनी तीव्रता से महसूस नहीं होता जितना कि हो गया था। परन्तु कोई भी नाममात्र के लिए भी धन ऋण के लिए उपलब्ध नहीं था। सरकार ने ब्याज वाले खजाने के नोट जारी किए जो देश के परिचालित माध्यम का भाग बन गए। परन्तु सरकार ने ब्याज दर पर खजाने से नोट जारी किए जो सरकार की परिचलन पद्धति का भाग बनी। किन्तु यह राशि बहुत ही कम होने पर खजाने के नोटों ने ''असफलता सिद्ध की जिसका पहला कारण उस शर्त से संबंधित था जिन्हे बारह महीनों के लिए राजस्व के भुगतान के लिए प्राप्त नहीं किया जाएगा। दूसरा कारण यह था कि उनका भुगतान अथवा प्राप्ति उसी स्थान पर होगी जहां से उन्हें जारी किया गया था। चूंकि इन नोटों का प्रयोग कलकत्ता, मद्रास और बंबई तक ही सीमित रखा गया, उनके परिचालन के प्रयोजनों का उपयोग तथा काम में लाने की स्थिति उन शहरों तक सीमित रखी गई....... और अंत में क्योंकि उनकी राशि अत्यधिक थी और ब्याज पर उनके परिचालन की अवधि बहुत कम थी।''

बैंकिंग पद्धति का इतना अधिक विकास नहीं हो पाया था कि वाणिज्य की मुद्रा संबंधी आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। इसकी वृद्धि का मुख्य अवरोध की प्रवृत्ति रही। स्वयं में एक व्यापारिक संस्था के रूप में विनिमय का काम करने वाला अधिकरण (कोर्ट) बैंकिंग संस्थाओं के विकास के विरुद्ध था क्योंकि उसे डर था कि कहीं वे उसके प्रतिद्वन्दी न बन जाएं। अधिकरण के सौदागर राजकुमारों की संस्था न रहने के बाद भी यह शत्रुता की पारंपरिक नीति बनी रही, बैंक व्यापार की वृद्धि के साथ आगे नहीं बढ़े। वास्तव में 1856 तक भारत में बैंकों की संख्या बहुत कम थी और उसके प्रचालक भी कम थे जैसा कि (तालिका V) में दिखाया गया है।

तालिका V

भारत में बैंक*

बैंक का नाम	स्थापना का वर्ष	मुख्यालय	शाखाएं और एजेंसियां	पूंजी: अभिदत्त	पूंजी: दत्त	परिचालन में नोट	तिजोरी के प्रकार	कमीशन मिलने वाले बिल
बैंक ऑफ बंगाल	1809	कलकत्ता	—	1,070,000	1,070,000	1,714,771	851,964	125,251
बैंक ऑफ मद्रास	1843	मद्रास	—	300,000	300,000	123,719	139,960	59,871
बैंक ऑफ बम्बई	1840	बम्बई	—	522,000	522,000	571,089	240,073	195,836
ओरियण्टल बैंक	1851	—	आगरा, मद्रास, लाहौर	1,215,000	1,215,000	199,279	1,146,529	2,918,399
आगरा और यू.पी.	1833	कलकत्ता	कैन्टन और बबई, शिमला, मसूरी और आगरा	700,000	700,000	—	74,362	—
एन डब्ल्यू बैंक	1844	कलकत्ता	एजेन्सियां दिल्ली और कानपुर में —	220,560	— 220,000	325,000	—	—
लदन एण्ड ईस्टर्न बैंक	1854	—	कलकत्ता, कैंटन और शघाई में एजेंट	250,000 1,000,000	456,000	—	—	—
कामर्शियल बैंक	1854	बंबई	लंदन, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में एजेंट	—	180,000	—	—	—
दिल्ली बैंक	1844	दिल्ली		—	63,850	—	—	—
शिमला बैंक	1844			30,000	—	—	—	—
ढाका बैंक	1846	बम्बई	लंदन, कलकत्ता, कोलम्बो कैण्डी	500,000	328,826	777,156	77,239	109,547
मर्केनटाइल बैंक								
इंडिया, चायना एण्ड अस्ट्रेलियन बैंक	—	—	कैन्टन और शघाई					

चांदी की अपर्याप्तता और ऋण मुद्रा के अभाव में व्यापार के लिए ऐसी उलझन पैदा कर दी कि करेंसी एक्ट, 1835 की प्रवृत्ति में परिवर्तन उभर उठा तथा लोगों ने एक बार फिर पूछना प्रारंभ कर दिया कि यद्यपि द्विधातु से एकल धातुवाद में परिवर्तन किया जाना श्रेयस्कर था तथापि चांदी के एकल धातुवाद की अपेक्षा सोने के एकल धातुवाद को वरीयता देने अधिक अच्छा था। जैसे ही अधिकाधिक सोने का आयात किया गया और उसके सिक्के बनाए गए वैसे ही भारतीय मुद्रा के तत्कालीन पद्धति में वैध प्रतिष्ठा देने की मांग बढ़ती हुई। सभी सोने की मुद्रा के सिद्धान्त पर सहमत हो गए जो कुछ भी अंतर था, वह उसके अनुकूल के तरीके तक सीमित रहा। द्विधातु के आधार पर सोने के जारी किए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि सरकार ने 'आशाहीन प्रयास' करना मना कर दिया जिसके अनुसार सोने और चांदी के मूल्य को निर्धारित करने के लिए उनके मूल्य की स्वीकृति के लिए बाध्य किया जाना था। सरकार जिन परियोजनाओं पर विचार करने को तत्पर थी वे इस प्रकार थे (1) ''सोवेरिन'' अथवा किसी अन्य प्रकार के सोने के सिक्के को जारी करना तथा दिनप्रति दिन बाजार के भाव के अनुसार उसका परिचालन जैसा कि चांदी के संबंध में मापा गया था (2) एक नया सोने का सिक्का जारी करना जिस पर रुपयों की दी गई संख्या का वास्तविक मूल्य और एक सीमित अवधि के लिए उसे विधिमान्य चलार्थ मानना; जब उसे फिर से समायोजित किया जा सके और फिर से मूल्यांकन किया जा सके तथा नई दर पर उसी अवधि के लिए विधिमान्य चलार्थ बनाया जा सके (3) अंग्रेजी सोवेरिन को इस रुपए के विधिमान्य चलार्थ के रूप में प्रारंभ करना परन्तु 20 रुपये की राशि अथवा दो सोवेरिन के बराबर विधिमान्य चलार्थ तक सीमित रहना, अथवा (4) चांदी के मानक के स्थान पर सोने के मानक को स्थापित किया जाना।

इस परियोजनाओं में से पहली तीन परियोजनाएं मुद्रा संबंधी कार्यसाधकों के रूप में स्पष्टतया असुरक्षित थीं। मुद्रा के विभिन्न भागों के बीच मूल्य का स्थापित करना सुनियोजित मुद्रा संबंधी पद्धति की आवश्यक अपेक्षा है। प्रत्येक भोले–भाले की कीमत स्पष्ट होनी चाहिए, ताकि जिसको इसकी जानकारी की समझ न हो वह भी इसका मूल्य समझ सके। जब ऐसा सिक्का अपना मूल्य नहीं बता पाता तब वह केवल वस्तु बन जाता है और उसके मूल्य में उसी प्रकार का उतार–चढ़ाव होता है जैसा कि बाजार भावों में है। इस कसौटी ने पहली दो परियोजनाओं को निरस्त कर दिया। सिक्के को मुद्रा के रूप में चलाए जाने पर – जिसके मूल्य के लिए कोई उत्तरदायी न हो जैसी कि पहली परियोजना के अन्तर्गत स्थिति बन सकती थी– मूल्य आज कुछ है तो कल कुछ है। परिकलन व घटती–बढ़ती का हिसाब में जो कष्ट होता उसके अलावा यह एक लज्जाजनक ऐसा विषय बन जाता, यह कहना पड़ेगा कि सरकार ने इसे न अपना कर बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। दूसरी परियोजना में ऐसी कोई बचाव की युक्ति नहीं कि पहली परियोजना की अपेक्षा इसको अपनाने की संस्तुति की जाती। यदि इसे स्वीकार किया जाता तो परिणाम यह होता कि उस अवधि में जब दर निर्धारित की गई, सोने को परिचालन में किया जाता मानों इसका बाजार–मूल्य अपेक्षाकृत कम था और वर्ष के अंत में यदि यह पता होता कि दर में संशोधन किया जाएगा और सक्के का मूल्य सोने का मूल्य गिर जाने की समान स्थिति में कम हो जाएगा तो अधिक दर के सोने के सिक्के से बचने के लिए सामान्य संघर्ष और दूसरे के कंधों पर आवश्यक हानि के डालने से निश्चय ही बाद में घटित होता। तीसरा एक प्रकार से विचित्र प्रस्ताव था। यह सभव है कि कम मूल्य की धातु के पूर्ण मूल्य की अपेक्षा कम मूल्य के सिक्के ढाले जाएं ताकि छोटे–छोटे भुगतान किए जा सकें और उनकी वैधता को सीमित किया जा सके। परन्तु यह उच्च मूल्य की धातु के लिए संभव नहीं है, इसका उद्देश्य है कि बड़े लेन–देन को सुविधा उपलब्ध कराई जाए। इस योजना के प्रति आपत्तियों को कठिनाई से छिपाया जा सका। जब तक सोने के मूल्य में कमी रहेगी तब तक इसका परिचालन बिल्कुल नहीं होगा। परन्तु बाजार के अनुपात में परिवर्तन होने के कारण इसका अधिक मूल्य हो गया तो रुपये का परिचालन नहीं हुआ तथा दुकानदारों और व्यापारियों को ऐसा सिक्का मिला होता जो बड़े लेन–देन के चुकाने के लिए उपयोगी न होता।

इन दोषों से मुक्त केवल एक परियोजना थी जिसके अनुसार सोने के मानक को स्वीकार करना था और चांदी को सहायक मुद्रा माना जाना था। सरकार इस मांग के विरुद्ध जो सबसे शक्तिशाली तर्क दे सकती थी वह यह था कि ऐसे देश में जहां सभी दायित्वों को चांदी में भुगतान के लिए सीमित कर दिया गया था, ऐसा कानून बनाना जिसके अनुसार बलपूर्वक किसी अन्य माध्यम से भुगतान किया जाना होता तो इससे साधारण रूप से ऋणी के लाभ के लिए ऋणदाता को धोखे में डालना होगा। फिर भी यह तर्क कितना ही ठोस क्यों न हो, भारतीय मुद्रा के विस्तार करने के आधार पर रखने की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने मे निराशाजनक रूप से अपर्याप्त था। वस्तुतः यह नहीं कहा जा सकता कि सरकार वास्वत में स्वर्ण मुद्रा के विरोध में गंभीर थी। अपनी स्थिति को शक्तिशाली बनाने के लिए सरकार ने सोने के विरूद्ध अपने तर्कों के ठोस होने पर विश्वास नहीं किया अपितु उसकी इस खोज पर विश्वास किया गया कि मौजूदा स्वर्ण मुद्रा के स्थान पर उसके हाथ में दूसरा विकल्प मौजूद है। यदि केवल वर्तमान मुद्रा में पूरक की आवश्यकता थी तो सरकार द्वारा प्रस्तावित उपचार अपराजेय था। सोना खर्चीला और असुविधाजनक था। कागजीमुद्रा के साथ चांदी की मुद्रा मितव्ययता पूर्ण, सुविधाजनक तथा विस्तारपूर्ण थी। वास्तव में सरकारी विकल्प के पक्ष में इतने अधिक लाभ थे कि चांदी के मानक के लिए प्रथम प्रयास से सोने के मानक की स्थापना ही नहीं हुई अपितु उपलब्ध चांदी के मानक के पूरक के रूप में सरकारी कागजी मुद्रा को प्रारंभ किया गया।

चाहे कुछ भी क्यों न हो, लोगों की इच्छा सोने के मानक के लिए इतनी प्रबल थी कि उसकी पूर्ण रूप से अनदेखी नहीं की जा सकती थी। यद्यपि इसकी मांग वैकल्पिक साधनों द्वारा पूरी मानी गई थी। कागजी मुद्रा जैसा कि प्रारंभ में श्री विलसन द्वारा विचार किया गया था, स्वर्ण विरोध पूर्णतया घोर निंदक था परन्तु उनके उत्तराधिकारी श्री लैंग उनसे असहमत थे और उन्होंने भारतीय मुद्रा के सोने का बहिष्कार बर्बतापूर्ण कहा। इसलिए उन्होंने मूल विधेयक में दो महत्वपूर्ण उपबंध प्रस्तुत किए, जब इसके कार्यान्वयन का भार उन पर पड़ा क्योंकि श्री विलसन का आकस्मिक निधन हो गया था। एक कार्य यह था कि 5 रुपये की सबसे कम मूल्य की कागजी मुद्रा को 20 रुपये की कागजी मुद्रा में बढ़ाना था। दूसरा कार्य था–

''गवर्नर–इन काउंसिल को इस बात का अधिकार देना कि वे लिखित आदेश समय–समय पर कलकत्ता, मद्रास और बम्बई के गजट में प्रकाशित करेंगे कि कागजी मुद्रा जो सिक्के और सर्राफे द्वारा प्रतिनिधित्व करने वाले प्रचलन की कुल राशि के चौथाई भाग से अधिक मूल्य के न हों उन्हें..... सोने के सिक्के के लिए विनिमय में जारी किया जाए..... अथवा ऐसे आदेश द्वारा निर्धारित की जाने वाली दरों पर संगठित सर्राफा.....''

अधिनियम जिसमें बाद में विधेयक भी समा गया दूसरा उपबंध पूर्णतया स्वीकार कर लिया और प्रथम उपबंध को इस संशोधन के साथ स्वीकार किया कि जारी की जाने वाली कागजी मुद्रा में सबसे कम मूल्य वर्ग की कागजी मुद्रा 10 रुपए की होनी चाहिए। यद्यपि इसका सामान्य प्रयोजन स्पष्ट है, दूसरे उपबंध का सामान्य उपबंध सरकारी कागजातों के देखने से बिल्कुल स्पष्ट नहीं हो पाता। कागजी मुद्रा विधेयक पर चयन समिति ने ऐसा कहा प्रतीत होता है कि उपबंध अहानिकारक था यदि वह अच्छा न था। इसने सोचा –

''कि विशेष अवसरों पर तथा विशेष लेन–देन के मामलों में सौदागर समुदाय के लिए यह जानना अधिक लाभदायक होगा कि सोने को निर्धारित दर पर मुद्रा के रूप में उपलब्ध किया जा सकता है। दूसरी ओर यदि निर्धारित दर पर सोने ने परिचालन में प्रवेश नहीं किया तो इससे यह सिद्ध होगा कि सुरक्षित और परिवर्तित परंतु इसमें संदेह नहीं है कि श्री लैंग ने इसे स्वर्ण मानक में परिवर्तित करने के लिए सरल उपाय के रूप में देखा। उन्होंने 7 मई, 1862 के मुद्रा तथा बैंकिंग संबंधी कार्यवृत्त में लिखाः–

''इस उपबंध का उद्देश्य यही था कि सोने के भावी उपयोग के संबंध में सावधानीपूर्वक और अस्थायी तौर पर प्रयोगों के लिए द्वार खुले रखे जाएं। सोने का आयात पहले ही से विद्यमान है और यह बढ़ रहा है तथा स्थानीय जनता इस धातु की बहुत प्रशंसा करती है जिसके कारण सामान्य तौर पर यह अधिमूल्य पर है..... इस प्रकार एक समय के बाद यदि सोने का उपभोग आम हो जाता है और इसका मूल्य और स्थिर हो जाता है तब कुछ अन्य कदम उठाए जा सकते हैं। और ऐसा लगता है कि उस समय के राज्य सचिव का यही विचार रहा होगा क्योंकि उन्होंने सोने की तुलना में कागजी मुद्रा जारी किए जाने के पक्ष में सिफारिश के बल को समझा कि भारत में स्वर्ण–मुद्रा का प्रारंभ किये जाने से प्रभावकारी योगदान होगा।''

परन्तु चाहे सौदागर समुदाय के लिए राहत के रूप में विचार किया गया हो अथवा स्वर्ण–मुद्रा के प्रारंभ किए जाने के लिए कोई मार्ग प्रशस्त करना हो, इस उपबंध को कार्यान्वित नहीं किया गया। राज्य सचिव ने इसके संबंध में की गई किसी भी कार्यवाई पर आपत्ति की। इसी बीच कागजी मुद्रा रामबाण सिद्ध नहीं हुई, जैसा कि प्रण किया था। जहां तक यह पहुंच पायी यह अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई, वह नगण्य था।

तालिका VI

कागजी मुद्रा का विस्तार और अर्थव्यवस्था

महाप्रान्त	सर्राफा	सिक्का	सरकारी प्रतिभूतियां	परिचालित नोटों का मूल्य
31 अक्टूबर, 1863 को कलकत्ता	--	18,455,922	11,044,078	29,500,000
31 अक्तूबर 1863 को मद्रास	--	7,300,000	--	7,300,000
4 जनवरी, 1864 को बंबई	117,000,000	19,000,000	--	23,600,000
जोड़	**177,000,000**	**37,655,922**	**11,044,078**	**60,400,000**

जैसा कि श्री कैसल्स ने बताया कि तीन वर्ष बाद कागजी मुद्रा कुल धातु–मुद्रा का लगभग 6 प्रतिशत तक बनाई गए जो उस समय श्री विलसन द्वारा पौंड स्टर्लिंग में 100,000)000 का अनुमान लगाया गया था और उन्होंने दस लाख स्टर्लिंग या सारे का 1% तक की देश की पुनरसेत्पादक पूंजी के निर्मुक्त करने के प्राथमिक उद्देश्य की वास्तव में पूर्ति की। अमरीकी कपास के स्थान पर भारत की कपास की मांग लिवरपूल में बढ़ गई, इस कपास का निर्यात गृह युद्ध के दौरान बन्द हो गया था इस प्रकार विदेशी व्यापार का काफी अनुपात हो गया। चूंकि कागजी मुद्रा ने कोई राहत नहीं दी अतः सारा बोझ चांदी पर पड़ा। फिर भी चांदी का उत्पाद उतनी तीव्रता से नहीं हो रहा था। जितना पहले हुआ था और भारत में उसकी खपत मद्धिम नहीं हुई थी। अतः मुद्रा–माध्यम की अपर्याप्तता काफी महसूस हुई जैसी कि अपर्याप्तता पहले महसूस की गई थी चाहे कागजी मुद्रा ही प्रारंभ क्यों न की गई हो। सोने का अधिक मात्रा में आयात ही नहीं किया गया परन्तु उसका मुद्रा संबंधी प्रयोजनों के लिए उपयोग किया गया यद्यपि यह विधिमान चलार्थ नहीं थी। यह तथ्य बम्बई चैम्बर ऑफ कामर्स द्वारा भारत सरकार के सामने लाया गया। इस बारे में निवेदन किया गया कि भारत में स्वर्ण–मुद्रा जारी की जाए। यह बात कही गई।

''स्वर्ण निर्मित मुद्रा बनाने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है परन्तु इस देश के लोग मौजूदा चांदी की मुद्रा के दोषों के अपरिष्कृत उपचार में लगे हैं,''

और

''सोने की छड़ों पर बम्बई के बैंकों की मुहर लगा दी गई है और इस प्रयोजन के लिए उन्हें देश के अनेक भागों में परिचालित किया जा रहा है।''

इससे एक आन्दोलन उत्पन्न हुआ जिससे सरकार से यह अपेक्षा की कि पेपर करैंसी एक के उपबंध को कार्यान्वित किया जाए और इस आन्दोलन ने ऐसा स्वरूप धारण कर लिया जिसने सरकार के हाथ बांध कर रख दिये। इस अवसर पर इस परिवर्तन को प्रभावकारी करने के लिए योजना के बारे में साहसपूर्वक विचार किया गया। सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने इस उपबंध के कमजोर पक्षों को अच्छी तरह समझ लिया और इस हेतु सरकार के कार्य करने के लिए कहा गया। उन्होंने तर्क दिया कि कागजी मुद्रा देश के परिचालित सिक्कों में ही देय थी और जो भारत में चांदी का रुपया था उस सुरक्षित सोने के भंडार के भाग को रखना था जो नोटों के भुगतान के लिए वैध नहीं माना जा सका और इससे राजनीतिक अविश्वास अथवा वाणिज्यिक संत्रास के समय उनकी परिवर्तनीयता को गंभीर खतरा था।

तालिका VII*

व्यापार और मुद्रा

वर्ष	वाणिज्य वस्तु		खजाना		कुल सिक्के		वृद्धि + अथवा कमी–		का वार्षिक उत्पादन	
	आयात पौंड	निर्यात पौंड	चांदी पौंड	सोना पौंड	चांदी पौंड	सोना पौंड	चांदी पौंड	सोना पौंड	सोना	चांदी
1860-61	23,493,716	32,970,605	5,328,009	4,232,569	5,297,150	65,038	-30,859	-4,167,531	23,9	8,2
1861-62	22,320,432	36,317,042	9,086,456	5,184,425	7,470,030	58,667	-1,616,426	-5,125,758	22,8	8,5
1862-63	22,632,384	47,859,645	12,550,155	6,848,156	9,355,405	130,666	-3,194,750	- 6,717,490	21,6	9,0
1863-64	27,145,590	65,625,449	12,796,717	8,898,306	11,556,720	54,354	-1,239,997	-8,843,952	21,4	9,8
1864-65	28,150,923	68,027,016	10,078,798	9,839,964	10,911,322	95,672	+832,524	-9,744,292	22,6	10,3
1865-66	29,599,228	65,491,123	18,668,673	-5,724,476	14,639,353	17,665	-4,029,320	-5,706,811	24,1	10,4
1866-67	29,038,715	41,859,994	6,963,073	3,842,328	6,183,113	27,725	-779,960	-3,814,603	24,2	10,1
1867-68	35,705,783	50,874,056	5,593,961	4,609,466	4,385,080	21,534	-1,208,881	-4,587,932	22,8	10,8
1868-69	35,990,142	53,062,165	8,601,022	5,159,352	4,269,305	25,156	-4,331,717	-5,134,196	22,0	10,0
1869-70	32,927,520	52,471,376	7,320,337	5,592,016	7,510,480	78,510	+190,143	-5,513,506	21,2	9,5

अतः उन्होंने आन्दोलन की सीमा के परे साहसिक कार्य किया और यह घोषित किया कि सोने की बजाय पीछे के दरवाजे से मुद्रा के अन्दर प्रवेश कराने के इससे अधिक श्रेयस्कर यह होगा कि सोने को भारत में मूल्य का मानक बनाया जाना चाहिए। वे श्री विल्सन के उस विचार से सहमत नहीं थे कि यदि स्वर्ण के मानक के स्थान पर चांदी का मानक स्वीकार कर लिया जाए तो इससे ''ऋणदाता का विश्वास भंग हो जाएगा।'' परन्तु वे इस तथ्य से भी अपने इरादे में पीछे नहीं हटे कि चांदी की मुद्रा को सहायक स्थिति में जाने के पूर्व भारत में सोने की मुद्रा के प्रारंभ से कुछ समय के लिए दोहरा स्तर स्थापित हो जाएगा क्योंकि उन्होंने यह तर्क दिया कि ''सभी देशों को दोहरे स्तर की परिवर्तनशील अवस्था में से अवश्य गुजरना चाहिए। इससे पूर्व कि वे एकाकी स्तर पर आएं। तदनुसार उन्होंने यह सुझाव दिया कि (1) ब्रिटिश अथवा आस्ट्रेलिया के मानक के सोवरन और आधा सोवरन को भारत में 10 रुपये का एक विधिमान्य चलार्थ मानना चाहिए। (2) सरकारी कागजों की मुद्रा विनिमय के लिए थी तो रुपया से या सोवरन 10 रुपया प्रति सोवरन की दर से होनी चाहिए किन्तु वे सोने चांदी के विनिमय के लिए नहीं होने चाहिए।

उनके सुझावों को भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया तथा उन्हें राज्य सचिव की स्वीकृति के लिए भेज दिया गया। परन्तु राज्य सचिव एकल धातु पद्धति से न हटने के लिए अधीर–अशान्त थे उन्होंने बड़ी अशिष्टता से इस समग्र परियोजना को छोड़ दिया। उनका उत्तर तर्क का विकृत रूप है तथा भयानक रूप से छिछला है। वे इन सुझावों को स्वीकार करने के लिए अनिच्छुक थे क्योंकि वे इस बात से संतुष्ट थे कि एक सोवरन की मूल्य 10 रुपये रखने से सोवरन की दर को कम करना बहुत बड़ी बात थी जिससे उसने परिचालन की अनुमति नहीं दी जा सकती। यही वह स्थिति थी जिसमें यह ठोस आधार पर खड़ा था। भारत की टकसाल में सोवरन को बनाने की लागत का अनुमान उस समय 10–4–8 रुपये था, जबकि इंग्लैंड से कलकत्ता को उसके निर्यात का अनुमान 10–9–10 रुपये था और आस्ट्रेलिया से उसके आयात अनुमान 10–2–9 रुपये था। चाहे कोई भी उचित दर क्यों न हों, सोवरन 10 रुपये प्रति सोवरन की दर से परिचालित नहीं हो सकता था। वह खेद का विषय था कि सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने उच्च अनुपात का सुझाव नहीं दिया ताकि सोवरन के परिचालन को आश्वस्त मामला बनाया जा सकता। परन्तु राज्य सचिव फिर भी इस सुझाव के रहे उतने ही विरोधी रहते यहां तक कि यदि राज्य सचित के लिए प्रतिकूल अनुपात पर आधारित सुझाव व्यर्थ था। परन्तु यदि यह अनुकूल अनुपात पर आधारित होता, यह कुछ कम अहितकर नहीं था क्योंकि इसने उस संभावना का पूर्वाभास दिया जिसके बारे में वे इस दोहरे मानक की सबसे अधिक त्रुटिपूर्ण पद्धति समझते थे चाहे यह कितनी भी अस्थायी क्यों न हो। मात्र द्विधातु पद्धति की सम्भावित वापसी राज्य सचिव को डराने के लिए यथेष्ट थी। जिसके कारण इस सारी क्योंकि उन्होंने इस बात को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था कि, यह सार्वजनिक लाभ के लिए हितकर होगा कि दोहरे मानक की अवधि में से होकर जाया जाए जिससे मुद्रा के आधार को चांदी से सोने में परिवर्तन किया जाए। राज्य सचिव केवल यही एक रिआयत देने को तत्पर थे उन्होंने इस बात की अनुमति ली कि ''सोने के सिक्के को सरकार द्वारा निर्धारित दर और सार्वजनिक रूप से की गई घोषणा द्वारा लोक खजानों में प्राप्त किया जा सकता है बिना इसे भारत में वैध चलार्थ बनाए। यह स्मरणीय है यह उस मूर्खतापूर्ण कानून की पुनरावृत्ति थी जिसे 1852 में छोड़ दिया गया था क्योंकि उससे सरकार को लज्जित होना पड़ा था। ऐसे सिक्के को प्राप्त करने के प्रस्ताव जिसकी कीमत आप अदा न कर सकते हों यह एक मुसीबत मोल लेना था और परियोजना के अंतनिर्हित सुविचारित खतरे की रोकथाम करने की दृष्टि से अधिक परिपक्व सुझाव प्रस्तावित किया गया था।

परन्तु मुद्रा का अभाव इनता अधिक था कि भारत सरकार अपने विचार पर हठपूर्वक चिपके रहने के बजाए राज्य सचिव के सुझाव को मानने को राजी हो गई और नवंबर 1864 मे सरकारी अधिसूचना जारी की जिसमें यह घोषणा की कि ''इंग्लैंड अथवा आस्ट्रेलिया की अभिकृत शाही टकसाल में ढाले गए वर्तमान भार के सोवरन और आधे सोवरन को जब तक कि अन्य सूचना न हो माना जायेगा सभी भारत स्थित अंग्रेजी खजाने तथा इसके अधीनस्थ खजानों में सरकार को देय राशि के भुगतान में 10 व 5 के क्रमशः बराबरी पर दिया जाएगा। और यह कि सोवरन और आधा सोवरन जब कभी सरकारी खजाने में उपलब्ध होंगे तो सरकार के दावों के भुगतान के लिए समान दरों पर उन्हें किसी भी इच्छुक व्यक्ति को दिया जाएगा।'' सोवरन की वास्तविक समानता 10 रुपये से कुछ अधिक मूल्य की थी। इसलिए अधिसूचना पर कोई कार्यवाही न हो सकी। दूसरी ओर मुद्रा की स्थिति पूर्ववत अधिक विकट रही और भारत सरकार ने 1866 में बंगाल चैम्बर ऑफ कामर्स के कहने पर सोने के परिचालन को प्रभावकारी बनाने के लिए कदम उठाए। इस बार चैम्बर ने जांच आयोग के गठन पर जोर दिया जिसका विषय था ''भारत की मुद्रा पद्धति में सोने के सिक्के जारी करने की उपयुक्तता'' परन्तु भारत सरकार ने यह कहा कि सोने क अपेक्षा कागजी–मुद्रा जारी की गई है जिससे यह आशा है कि बहुमूल्य धातुओं में से किसी भी धातु की अपेक्षा यह अधिक सुविधाजनक और मान्य परिचालित माध्यम सिद्ध होगी।'' और इसके फलस्वरूप ''यह देखा जाना चाहिए कि कागजी–मुद्रा देश के लोगों की आदतों के अनुसार मांग और उपुयक्तता की दृष्टि से परिचालित माध्यम सिद्ध नहीं हुई है और सिद्ध नहीं होने की संभावना भी है जब तक कि

सेवा में,

नाम .....

पता .....

.....

.....

कागजी मुद्रा के निरस्त करने अथवा इसके अलावा स्वर्ण मुद्रा के चलन का प्रयास किया जाए।'' अतः एक आयोग का गठन किया गया ताकि 1861 के एक्ट 19 के अंतर्गत स्थापित वर्तमान मुद्रा प्रबंधों के कार्य–व्यापार'' की जांच की जा सके और यह रिपोर्ट दी जाए कि ''उपयुक्ता पर आधारित भारत में सोने की विधिमान चलार्थ के जारी किए जाने के क्या लाभ हैं। और इसके साथ ही साथ चांदी की मुद्रा का भी आंकलन किया जाए।'' आयोग ने विस्तृत जांच करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि कई कारणों के फलस्वरूप कागजी मुद्रा देश में परिचालित माध्यम के रूप में स्थापित होने से असफल हो गई परन्तु लोगों के लेन–देन के लिए सोने की मुद्रा का अधिक अच्छा स्थान बन गया। अन्त में आयोग ने सरकार से अनुरोध किया कि भारत में मुद्रा संबंधी प्रबंधों के लिए सोने को विधिमान्य चलार्थ माना जाए।'' अब सरकार की बारी थी कि वह इस सिफारिश को कार्यान्वित करें। परन्तु यह अजीब सी बात है कि सरकार आयोग की सिफारिशों को अपनाने की ओर नहीं बढ़ी जबकि यह आयोग स्वयं सरकार द्वारा गठित किया गया। सोने को विधिमान्य चलार्थ बनाने की बजाए जैसा कि आयोग ने सलाह दी थी, सरकार ने केवल एक ही कार्य किया वह यह कि 28 अक्टूबर 1868 को एक अन्य अधिसूचना जारी की जिसमें केवल सोवरन की दर को 10–8 रुपए में परिवर्तित कर दिया गया और इस एक तरफा कानून के दुष्परिणाम को बचाने के लिए अन्य कुछ भी नहीं किया गया। सौभाग्यवश सरकार के लिए सौभाग्यशाली रहा इस दर को ठीक करने पर भी यह देश में सोने का परिचालन बढ़ाने में असमर्थ रहा। उस समय तक मुद्रा संबंधी कठिनाईयां कम हो गई थी और चूंकि सरकार पर कोई नया दबाव नहीं डाला गया अतः इससे अंत में यह भारत में स्वर्ण मुद्रा जारी करने के लिए सरकार के दो असफल प्रयास सिद्ध हुए।

कुछ समय के लिए इस समस्या का निराकरण घटनाओं के स्वाभाविक क्रम से हुआ परन्तु बाद की घटनाओं जैसा दिखाया कि स्वर्ण मानक में परिवर्तन भारत के लिए अधिक श्रेयस्कर होता है और यूरोप के हितों के लिए इसका स्वागत किया जाता जो उस समय सोने की अधिकता के कारण ऊंचे मूल्यों से संकट ग्रस्त था। इस खास मौके पर भारत सरकार सचमुच में एक चौराहे पर खड़ी आई यदि सरकार ने परिवर्तन की हवा का साथ दिया होता और चांदी के मानक बदले में स्वर्ण मानक कर दिया होता जैसा कि वह आसानी से कर सकती थी यह कुछ वे जो कि भारतीय मामलों में अधिकार समर्थ और उन्होंने अपना पूरा अधिकार परिवर्तन के विरुद्ध लगाया यह कोई बेईमानी की बात नहीं थी जिसके लिए उनकी भर्त्सना की जाय। परन्तु इससे मनुष्य के अनर्थकारी कारनामों का एक और उदाहरण मिलता है। जिसमें अक्सर आदमी सोचने लगता है कि उसकी स्थिति बहुत अधिक सुरक्षित है जबकि यह अत्यन्त खतरनाक होती है। वे मुद्रा संबंधी स्थिति के बारे में इतना अधिक आरक्षित महसूस करते थे कि 1870 में जब टकसाल के कानून में संशोधन किया गया और उसे समेकित किया गया, वे इस बात से संतुष्ट थे जैसे कि कुछ भी नहीं हुआ या न कुछ होने वाला है कि 1835 के चांदी के मानक को शुद्ध तथा निष्कलंक रहने दिया जाए और सोने के मिश्रण से उसे दूषित नहीं होने दिया गया।

खेद का विषय है कि जिन लोगों ने उस समय कहा था कि उनसे भारतीय मुद्रा के प्रश्न को केवल ''न्यायिक'' दृष्टि से विचार के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा गया, उन्हें इस बारे में बहुत ही कम ज्ञान था।

साभार :

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–12, पेज संख्या 1 से 45 तक

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर